R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2022-24

जुलाई 2024

अंक 6

तपोभूमि

मासिक

पूज्य आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी की जन्म शताब्दी 29 जुलाई
के पावन अवसर पर तपोभूमि परिवार का विनम्र नमन

सम्पादकीय

अन्धेरे में आशा की किरण है आर्यवीर दल

वर्तमान संसार का परिवेश अत्यन्त विषाक्त हो गया है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अस्तित्व को बचाने के लिए चिन्तित है, लेकिन बचने का उपाय दिखाई नहीं दे रहा है। जिन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर कल्याण मार्ग प्राप्त करने की आशा की जाती है वे अपने आप पथभ्रष्ट हो रही हैं। वे हमारे नौनिहाल बच्चों की प्रतिभा की वधशाला बनकर रह गयी हैं। जिन माताओं की गोद में बच्चे का निर्माण की आशा थी वे भी बच्चों को भार ही मानती हैं। बच्चों से पीछा छुड़ाने के लिए उन विद्यालयों में फेंक कर चली आती हैं जहाँ बेचारे अनपढ़ चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी रहते हैं। वही उनकी देखभाल करते हैं दिन में बच्चे वहाँ रहते हैं घर आते ही उन बेचारों को खेलकूद आदि के लिए समय व स्थान नहीं होता है। माता के पास समय व्यतीत करना चाहते हैं तो माँ उन्हें मोबाइल थमा कर अपना पीछा छुड़ा लेती है। बच्चे भी इस मोबाइल में ऐसे उलझ जाते हैं संसार में क्या हो रहा है। हमें क्या करना चाहिए? कौन हमारा है? कौन पराया है? क्या हानि है? किससे लाभ है? इन बातों से विमुख सर्वथा एकाकी हो जाते हैं। क्रोधी, चिढ़-चिढ़े सम्वेदनशून्य इन बेचारों पर जब थोड़ी ही विपरीत परिस्थितियों की स्थिति बनती है। उनमें परिस्थितयों से टकराने के लिए न उनमें शारीरिक बल होता है। और विचार की संकीर्णता के कारण आत्मिक बल का भी अभाव हो जाता है। सामाजिक विमुखता के कारण सामाजिक बल भी नहीं रहता है। सर्वथा अपने को एकाकी निरुपाय पाकर उनके सम्मुख बिल्कुल शून्यता दिखाई पड़ती है जिससे वे अवसाद की स्थिति में चले जाते हैं और आत्म हत्या जैसा घातक कदम उठाते हैं। हम ऐसे अनेकों उदाहरण नित्य प्रति समाचार पत्रों में पढ़ते हैं। इस असहाय पीढ़ी को देखकर मन में अकथनीय पीड़ा होती है। इस समस्या का एकमात्र समाधान सत्य विद्या है जो मनुष्य को सारी आपदाओं से बचा सकती है। इसका मूल वेद है अर्थात् वैदिक शिक्षा ही मानव मात्र के कल्याणकारिणी है। पर खेद है कि सारा संसार इससे विमुख है। युगों बाद महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने संसार की इस भयानक पतनकारी स्थिति को देखा और अशान्ति को आग में जलते इस संसार को बचाने का एकमात्र उपाय ईश्वरीय ज्ञान वेद बताया और घोषणा की कि-

सब सत्य विद्या और जो पद्यार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है। फिर प्रश्न उठता है कि सबका कल्याण करने वाली सत्य विद्या प्राप्त कहाँ होगी। महर्षि दयानन्द ने इस बात का समाधान करते हुए लिखा है कि वेद सब विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इस बात से स्पष्ट हो गया कि वेद ही सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद वही प्राणिमात्र के कल्याण करने कृतकारी है। इसके लिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज संगठन को स्थापित किया जिससे सत्य विद्या के प्रचार-प्रसार से संसार का कल्याण हो सके। अपने समय में आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं ने भरपूर कार्य किया और समाज को दिशा भी दी लेकिन उस धारा को आगे ले जाने के लिए योग्य उत्तराधिकारी नहीं दे पाये जिससे ऐसी सर्वहितकारी विचारधारा कुण्ठित हो गयी है। अवैदिक विचारों का फिर प्राबल्य हो गया।

-शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्०)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–70 | संवत्सर 2081 | जुलाई 2024 | अंक 6

* संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

* संपादक
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

* व्यवस्थापक
कन्हैयालाल आर्य
मोबा. 9759804182

* जुलाई 2024

* सृष्टि संवत्
1960853125

* दयानन्दाब्द: 200

* प्रकाशक
सत्य प्रकाशन, मथुरा

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
लम्बा कद एवं दीर्घायु कैसे प्राप्त करें	–योगाचार्य चन्द्रभान गुप्त	5–8
बज्रांगी हनुमान	–ओंकारसिंह विभाकर	9–13
वेद चतुष्टय	–हरिदत्त शास्त्री	14–17
विष–चिकित्सा	–स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	18–21
पारस्परिक व्यवहार	–रघुनाथ प्रसाद पाठक	22–25
आर्य	–चिम्मनलाल वैश्य	26–28
कर्म में नीति–अनीति का विचार	–आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री	29–33
अथर्ववेद पारायण यज्ञ		34

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 200/– | पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 2100/–

वेदवाणी

लेखक: डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

हे काम ! मेरे शत्रुओं को नष्ट कर दे

यथा देवा असुरान्प्राणुदन्त यथेन्द्रो दस्यूनधमं तमो बबाधे।
तथा त्वं काम मम ये सपत्नास्तानस्मात्लोकात्प्रणुदस्व दूरम्।। –अथर्व0 9/2/18

शब्दार्थ:–

(यथा) जैसे (देवाः) दिव्य गुणों वाले मनुष्य (असुरान्) आसुरी स्वभाववालों को (प्राणुदन्त) दूर खदेड़ देते हैं, (यथा) जैसे (इन्द्रः) इन्द्र (दस्यून्) दस्युओं को (अधमं तमः) निचले अन्धकार में (बबाधे) बाधित कर देता है, (तथा) वैसे ही (काम) हे मेरे संकल्प (त्वम्) तू (मम ये सपत्नाः) मेरे जो शत्रु हैं (तान्) उन्हें (अस्मात् लोकात्) इस लोक से (दूरं प्रणुदस्व) दूर भगा दे।

भावार्थ:–

संसार में देवासुर संग्राम चल रहा है, अन्तरात्मा के अन्दर भी चल रहा है, समाज में भी चल रहा है। अन्दर सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान आदि दिव्यगुण और हिंसा, दम्भ, अन्याय, असत्य, अज्ञान, छल, आत्मप्रवंचना आदि दुर्गुणों के मध्य संग्राम हो रहा है। कभी सद्गुण प्रबल हो जाते हैं, कभी दुर्गुण बाजी मार ले जाते हैं। अन्ततोगत्वा सद्गुणों की ही विजय होती है। बाहर दिव्यगुणोंवाले मनुष्यों का आसुरी स्वभाववाले मनुष्यों से संग्राम होता है, उठक–पटक होती है, अन्त में दिव्य गुणोंवाले मनुष्यों का पलड़ा ही भारी रहता है, वे विजयी होते हैं। इसी प्रकार इन्द्र जीवात्मा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दस्युओं से संग्राम करता है, और उन्हें अधम तमस् में धकेलकर विजय प्राप्त करता है। बाहर इन्द्र राजकीय सेनाध्यक्ष है, वह तस्कर, डाकू, आततायी, आतंकवादी से संग्राम कर रहा है। अभी तक आतंकवाद पनप रहा है, सब देश मिलकर भी आतंकवाद को समाप्त नहीं कर पा रहे हैं। कोई समय आ सकता है, जब इन्द्र आतंकवाद को समूल नष्ट कर सके।

जैसे देव असुरों पर विजय पाते हैं, जैसे इन्द्र दस्युओं को कालकोठरी में हवाले करता है, ऐसे ही हे काम ! हे मेरे प्रबल संकल्प ! जो मेरे सपत्न हैं, साथ मिलकर मुझ पर आक्रमण करनेवाले हैं, उन्हें तू इस लोक से विदा कर दे। उन्हें पराजित करके उनका नाम–निशान मिटा दे।

❁❁❁

गतांक से आगे–

लम्बा कद एवं दीर्घायु कैसे प्राप्त करें ?

लेखक: योगाचार्य चन्द्रभान गुप्त

कृषि के काम में गायों की जगह मशीनों का काम होने लगा है। गाय फालतू हो जाने के कारण इन गायों की हत्याओं में हमारा भी अपरोक्ष रूप से सहयोग मिल रहा है। यानि हम भी हत्यारों में शामिल हैं और हम हत्यारे मामूली नहीं अत्यन्त कठोर नृशंस एक नम्बर के हत्यारे हो गये हैं। इन गायों की हत्या करने के पहले इनके पैरों को बाँधकर लटका दिया जाता है। इनके शरीर पर उबलते हुए पानी की बौछार की जाती है देर तक, ताकि इनका शरीर फूल जाये, माँस मुलायम हो जाये, चमड़ी आसानी से उधेड़ दी जाये, फिर इनकी गर्दन को बीच से थोड़ी सी काट दी जाती है, ताकि गर्दन एक ओर लुढ़क जाये और इसके गर्दन से टपकती गरम–गरम खून की बूँदें नीचे पात्र में एकत्र की जाती हैं, जिनसे कई प्रकार की दवायें और खाने की अन्य वस्तुओं में मिलकर बनायी जाती हैं। जिसे हम बढ़े चाव से खाते हैं। बाजार में मिलने वाला बर्गर, चारमीन आदि वस्तुएँ इन गायों के नवजात बछड़े आदि के माँस से बनाया जाता है। अनजाने में हम कितना पाप अर्जन करते हैं, इन चीजों को खा–खाकर।

हमारा पेट छोटा सा है, सीमित दायरे में थोड़ी सी खुराक से ही पेट भर जाता है, भूख मिट जाती है। हमारी क्षुधा पूर्ति के लिये थोड़े से चावल, चार–पाँच रोटी, थोड़ी सी दाल, थोड़ी सी साग–सब्जी काफी है, जिनमें पैसे भी कम लगते हैं, समय भी कम लगता है। शरीर की आवश्यकतानुसार उपयुक्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज, लवण भरपूर मात्रा में उपलब्ध हो जाता है और शरीर पूर्णत: स्वस्थ रहता है। हमें मालूम नहीं गाय, सुअर, भेड़, बकरी, मुर्गी आदि के माँस रोग मुक्त हैं कि नहीं और यह जानते हुए भी हम कोई सा भी माँस खायें, ये तो हमारी मूर्खता ही समझी जानी चाहिये कि बहुत अधिक पैसे खर्च करके हम रोगों को निमन्त्रित करते हैं। रोग ग्रस्त होकर नित्य प्रति डाक्टरों की शरण में जाते रहते हैं। दवाई भी खाते हैं, पैसे खर्च भी करते हैं और पाप के भागी बनते हैं।

हमारे देश में जैन धर्मावलम्बियों का कहना है–'**जीओ और जीने दो।**' हम यदि शुद्ध शाकाहारी हैं तो हम शान्तिप्रिय और अहिंसक बने रहेंगे, इतिहास गवाह भी है कि हम प्राचीन काल से ही शान्तिप्रिय, अहिंसक बने रहे हैं, कोई हमारे ऊपर उँगली नहीं उठा सकता है कि हमारे देश की सेना ने कभी दूसरे देश पर आक्रमण किया हो, खून–खराबा किया हो।

यह हमारा पेट छोटा–सा है। दो रोटी से क्षुधा की निवृत्ति हो जाती है; परन्तु अपनी जिह्वा–लोलुपता जीभ के स्वाद के लिये पशु–पक्षियों का अकारण ही वध करते रहते हैं, उनका मांस–भक्षण करते रहते हैं, जिसकी वास्तव में कोई आवश्यकता ही नहीं है।

पूर्व में ही बताया जा चुका है कि मांसाहार से हमें तरह–तरह के रोगों से पीड़ित होना पड़ता

है। मोटापा बढ़ता रहता है, जोड़ों के दर्द से हम परेशान रहते हैं, कारण भी बताया जा चुका है कि मांसाहार खाने वाले को कार्बोहाइड्रेट बिल्कुल भी नहीं मिलता। यूरिया, यूरिक एसिड की बढ़ोत्तरी होने से जोड़ों के दर्द से कराहते रहते हैं और प्रोटीन की बहुलता के कारण रोगाक्रान्त बने रहते हैं। इन सारे दुःखों के पीछे केवल हमारी जिह्वा-लोलुपता ही है। यह कौन सी बुद्धिमानी की बात है? जबकि मांसाहार हमारे दिलोदिमाग पर भी छा जाता है, दुर्गुणों से भर देता है।

इस प्रकृति के नियमों का यह उल्लंघन ही है। प्रकृति संतुलन बनाये रखना चाहती है। मानव पशु और पक्षियों के बीच संतुलन बनाये रखना चाहती है क्योंकि यह तीनों एक-दूसरे के पूरक हैं। आपस में यह तीनों एक-दूसरे के ऊपर निर्भर हैं। इन पशु-पक्षियों की हत्या कर प्रकृति का संतुलन भी बिगाड़ रहे हैं और शत्रु-रूपी रोगों को हम ही आमंत्रित कर रहे हैं। इसमें हमारी शक्ति भी खर्च होती है, समय की बर्बादी भी होती है, पैसों की बर्बादी होती है, लाभ तो हुआ नहीं, अलग से हानि के रूप में बुलावा दे बैठते हैं।

प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ते हैं। प्राणी जगत में जितने भी पशु-पक्षी हैं, ये सभी मिलकर प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत सतुंलन से बचे हुए हैं। एक का भी अभाव हमें प्रभावित कर देता है। मांसाहार व्यक्ति का स्वभाव भी बदल जाता है। प्रकृति भी बदल जाती है, गुण भी बदल जाते हैं। एक शाकाहारी व्यक्ति सरल स्वभाव का होता है, दया, सहिष्णुता, करुणा से भरपूर होता है। सहभागिता के आधार पर परिवार और समाज के साथ कदत से कदम मिलाकर चलता है, उसके विपरीत मांसाहारी व्यक्ति कठोर, निर्दयी, नृशंस, अत्याचारी, दुराचारी और युद्ध पिपासु होता जाता है। अरब देशों में आज जो कुछ भी देखने को मिल रहा है, वह इसका साक्षात स्वरूप दिग्दर्शन करा रहा है।

यूरोपीय देश भी इससे अछूते नहीं बचे हैं। ये सभी मांसाहारी देश हैं। हमारा देश भारत प्राचीन काल से ही शाकाहारी रहा है। यह देश आक्रमणकारी कभी रहा ही नहीं। इतिहास गवाह है, हमने अपनी फौज लेकर कभी दूसरे पर आक्रमण नहीं किया, विजय अभियान हेतु। मांसाहारी देश ही हमारे ऊपर आक्रमण करते आ रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ शान्ति-शान्ति चिल्लाता आ रहा है, पर शान्ति कैसे आये, संयुक्त राष्ट्र संघ ने जिस प्रकार 21 जून को अन्तर्राष्ट्रिय योग दिवस मनाने का आह्वान किया है, ताकि योग के माध्यम से सारी दुनिया के लोग स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सके, उसी प्रकार ये संयुक्त राष्ट्र संघ का दायित्व होता है कि मांसाहार का प्रचलन बन्द कराये और लोगों को शाकाहारी बनने की ओर उन्मुख करें। इससे दुनिया के सभी देश सुख-शान्ति से रह सकेंगे और समृद्ध होंगे।

हमारा कहने का अर्थ है कि इस सृष्टि में दो की महत्वपूर्ण भूमिका है एक है जीव, एक है जीवात्मा और जीवात्मा का अर्थ है परमात्मा और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध। परमात्मा प्रकृति के माध्यम से ही अपना कार्य सुव्यवस्थित ढंग से सुचारु रूप से कर रहा है। प्रकृति ने सृष्टि को सुव्यवस्थित सुचारु ढंग से चलाने के लिये कुछ नियम बना रखे हैं, इन नियमों को मानव समाज द्वारा प्रतिपादित ढंग से संचालित किया जा रहा है। सम्पूर्ण प्राणी जगत रूपी बगिया के माली के रूप में हम मनुष्यों को बनाया गया है पर यदि माली ही बिगड़ जाये तो फिर बगिया को कौन सम्भाले। हमने अपने स्वास्थ्य को

बिगाड़ा, परिवार को भी विशृंखलित कर दिया, समाज को दूषित वातावरण दे दिया, देश और राष्ट्र को भी गर्त में ले जाने की कोशिश हो रही है, जब माँ-बाप अपने स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं करेंगे तो रोगी रहेंगे और रोगी माँ-बाप की सन्तान भी रोगी ही होगी और रोगियों की शृंखला का क्रम ऐसा ही चलता रहेगा, न हम स्वस्थ होंगे, निरोग रहेंगे और न हमारा समाज।

प्रश्न उठता है कि फिर स्वस्थ कैसे रहा जाये? स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है? उत्तर एक लाइन का है। मानव शरीर के विभिन्न आभ्यान्तरिक संस्थानों की गति ताल लय युक्त हो, मिलकर सद्भावपूर्ण तरीके से कार्यरत रहना। इन आभ्यान्तरिक संस्थानों के समूह के नाम हैं-रक्त संचलन संस्थान, श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, बर्हिगमन संस्थान, तंत्र संस्थान आदि। इन सभी का आपस में एक-दूसरे से अटूट सम्बन्ध है, एक संस्थान भी गड़बड़ाया या दुर्बल हुआ तो इनको सँभालने के लिये अन्य संस्थान भी आगे आ जायेंगे। उनका भार बढ़ जायेगा और दुगुनी शक्ति खर्च करनी पड़ेगी।

अन्ततः ये सभी संस्थान दुर्बल व रोग ग्रस्त हो जायेंगे। शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए विभिन्न संस्थानों का स्वस्थ योगदान आवश्यक है, जो हमारे क्रिया-कलापों पर निर्भर करता है। हमारे क्रिया-कलाप ऐसे हों जो इन विभिन्न संस्थानों के कार्य में भली प्रकार सहयोग दें। जैसे रक्त संचलन संस्थान है, इनको पूर्ण सहयोग हम तभी दे सकते हैं जब मेरा खान-पान ऐसा हो, जिससे शुद्ध रक्त का निर्माण अधिक हो और श्वांस क्रिया सुचारु ढंग की हो। पाचन संस्थान को भी अपने खान-पान के द्वारा दुरुस्त रख सकते हैं। शुद्ध सुपाच्य, विटामिन युक्त, ताजा आहार हो, बर्हिगमन संस्थान भी खान-पान पर निर्भर करता है। श्वांस की क्रिया इन सभी में भली प्रकार सहयोग देती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम ये कहना चाहेंगे कि श्वसन क्रिया हमारे शरीर को स्वस्थ व निरोग रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका सदा करती है। वैसे योग शास्त्र के अनुसार हमारी जिन्दगी में कुछ गिने हुये श्वांस मिले हैं। गणितज्ञ योग शास्त्रों के आंकड़ों के अनुसार सुगमता पूर्वक गणना करके बता सकते हैं, कि हमारी जिन्दगी में कितने श्वांस मिले हैं इतना विस्तार में न जाकर जो सरलता से समझ में आ जाये, विस्तार पूर्वक उसी का विवेचन नीचे कर रहा हूँ।

योग शास्त्र के अनुसार एक मिनट में हम 15 श्वांस-प्रश्वांस लेते आ रहे हैं यानि एक घंटे में 15 गुणा 60 = 900 श्वांस-प्रश्वांस छोड़ते हैं अथवा यूँ कहें कि 24 घण्टे में 24 गुणा 900 यानि 21600 श्वांस-प्रश्वांस लेते छोड़ते हैं। वैसे भी योग शास्त्र शताब्दियों पूर्व लिखा गया था उस समय हमारी देश की जनसंख्या आज की तुलना में बहुत कम थी, जल अधिकाधिक मात्रा में उपलब्ध था। शुद्ध निर्मल मीठा जल, वायु आज की तरह कल कारखानों विभिन्न प्रकार के वाहनों द्वारा छोड़ा गया शुद्ध-अशुद्ध विषैली गैसें नहीं थीं। यानि प्रदूषण रहित शुद्ध हवा, खाद्य सामग्रियों में अन्न, फल, साग-सब्जियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं। आज तो जल भी प्रदूषित, हवा, खाद्य वस्तुएँ सभी दूषित और विषाक्त हो गयी हैं। ऐसे प्रदूषित विषाक्त वातावरण में ऊपर लिखे श्वांस-प्रश्वांस का क्रम बिगड़कर अब 15 से अठारह प्रति मिनट हो गया है। इसका दुष्प्रभाव हमारे शरीर व आयु पर भी दीख रहा है। पूर्व काल में जहाँ इनी-गिनी चार-पांच ही बीमारियाँ थी वहाँ उन बीमारियों की शृंखला में इतनी बढ़ोत्तरी हो

गयी है, जिसे गिनना भी कठिन हो रहा है। हम भिन्न-भिन्न बीमारियों से ग्रस्त एवं काल-कवलित होते जा रहे हैं। आज से 60 पूर्व तक श्वांस का क्रम जो ऊपर 15 बताया गया था वहाँ तक तो वो उचित ही था पर आज के लिये विषाक्त वातावरण में ये क्रम 15 से 18 ही उचित माना जायेगा।

पूर्व में कई बार कह चुका हूँ कि श्वांस ही हमारी जिन्दगी है और प्रकृति ने हमें गिनती के श्वांस दिये हैं। वो जो हमें गिनती के श्वांस मिले हैं देखना ये है कि हम उसका कितना सही उपयोग करते हैं या कितना दुरुपयोग करते हैं। औसतन एक मिनट में स्वाभाविक 15 श्वांस-प्रश्वांस लेते हैं भोजन के समय क्रम बदल जाता है भीड़ में हो और तीव्र हो जाता है जैसे भोजन के समय हमारी श्वांस-प्रश्वांस 20 प्रति मिनट हो जाती है, गमना-गमन के समय 24 हो जाती है, भीड़ में 28 हो जाती है, दौड़ने के समय 32 हो जाती है। प्रतियोगिता के समय धावकों की बढ़कर 36 हो जाती है, सम्भोग की क्रिया में 40 से 42 तक चली जाती है मृत्युकाल में सर्वाधिक बढ़ जाती है और मरणान्तक पीड़ा होती है। आँकड़ों के अनुसार तुलनात्मक अध्ययन करने से यह बात भली भांति समझ में आ जायेगा। आधा घण्टा प्रभावित श्वांस क्रिया में 18 गुणा 30 यानि 540 श्वांस क्रिया हुई। एक धावक जैसे पहले ऊपर बताया गया एक मिनट में 36 श्वांस-प्रश्वांस ले जाता है।

दौड़ लगाने वाला धावक के श्वांस की गति 36 गुणा 30 यानि 1080 हो जायेगा और एक सम्भोग क्रिया में 42 के हिसाब से यदि 5 मिनट भी संलग्न रहे तो 42 गुणा 5 यानि 210 इस पर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारा स्वास्थ्य स्वस्थ हुआ या बिगड़ा। जितने पहलवान, धावक या स्पोर्ट्समैन को देखा जाये तो किसी ने भी शतायु प्राप्त नहीं की 100 वर्ष पूरे नहीं किये।

योग शास्त्र के अनुसार हमारी प्रभावी श्वांस की क्रिया चल रही है, श्वांस ग्रहण करने पर 10 अंगुल शरीर के भीतर तक श्वांस जाती है। श्वांस छोड़ने पर 12 अंगुल बाहर आती है। एक स्वस्थ व्यक्ति के श्वांस की गति प्रति मिनट 16 जो अन्दर ग्रहण करने पर 10 अंगुल तक अन्दर जाती है और 12 अंगुल बाहर आती है दुर्बल या रोगी व्यक्ति की यह गति बदल जाती है निद्रा के समय सम्पूर्ण गति ही अलग ढंग की हो जाती है उस समय हम जो श्वांस छोड़ते हैं वो 80 अंगुल निद्रा के समय बाहर आती है। फिर सामान्य व्यक्ति का कद यदि नापा जाये तो सम्पूर्ण शरीर की लम्बाई 96 अंगुल का होता है। इससे अंदाज लगाया जाता है कि निद्रा के समय 80 अंगुल श्वांस छोड़ना हमारे लिये कहाँ तक हितकर हो सकता है। अब हम तुलनात्मक दृष्टि से इस पर विचार करें, सामान्य स्थिति में 30 मिनट में (आधा घण्टा) में हमारा श्वांस 18 गुणा 12 गुणा 30 बराबर 6480 अंगुल होता है, 2 अंगुल लगभग एक इंच 6480 अंगुल का 3240 इंच यानि 270 फीट हमने निद्रा के समय श्वांस छोड़ा। 80 अंगुल श्वांस छोड़ने का अर्थ है आधे घण्टे में 30 गुणा 18 गुणा 80 यानि 43200 अंगुल श्वांस छोड़ा। स्वाभाविक स्थिति में आधे घण्टे में:

-43200-6480-(12 गुणा 18)

-36720 बराबर भाग 216 बराबर 170 मिनट अर्थात् 2 घण्टे 50 मिनट।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

बज्रांगी हनुमान

(चतुर्दश सर्ग)

लेखक: ओंकार सिंह 'विभाकर', उमरा हलियापुर, जिला–सुल्तानपुर (उ0 प्र0)

देख निर्गमन रामचन्द्र का, सबके हृदय उठा उद्‌गार।
महावीर को आगे करके, सब मिलि बोले विमल विचार॥
राजन् ! सबके हृदय लालसा, साथ अयोध्या चलने की।
राजतिलक आँखों से देखूँ, माता को प्रणाम करने की॥

फिर आशीष आपकी पाकर, अपने–अपने घर जायेंगे।
महाराज ! अब कृपा कीजिये, अनुमति नहीं भुलायेंगे॥
सर्व समन्वित वाणी को सुन, अति प्रसन्न श्री राम हुये।
यदि ऐसा है, अति उत्तम है, सहभागी सब आप हुये॥

मेरे लिये सुनहरा अवसर, इसको मैं न गवाऊँगा।
आप सबों के साथ अयोध्या, का आनन्द मैं पाऊँगा॥
अति आनन्दित, मित्र–सहायक, सबको यान बिठाया है।
ईश कृपा में अनुमति पाकर, चालक यान चलाया है॥

हे सीते ! यह विस्तृत सागर 'द्रोणशैल' औषधियों का घर।
सागर–सेतु, वानरी सेना, पार हुई पहुँची लंका पर॥
मधुर वार्ता रही परस्पर, किष्किन्धा पहुँचा विमान है।
तारा–रूमा–नील सुता को, लेकर आगे चला यान है॥

भरद्वाज के पावन आश्रम पर, विमान उतरा आ करके।
रात्रि प्रवास सभी का सुखमय, आनन्दित वाणी सुन करके॥
भरद्वाज के शुचि आश्रम से, दिवस दूसरे राम चले हैं।
देख अयोध्या को हर्षित थे, मित्र सहायक सब मचले हैं॥

महावीर से कहा राम ने, देखो कुशल राजधानी में।
शृंगवेरपुर राजा गुह को, कुशल बताना अगवानी में॥

मेरा कुशल क्षेम सुनकर वे, अति प्रसन्न हो जायेंगे।
वे भी परम मित्र है मेरे, तुमको गले लगायेंगे॥

तुम्हें अयोध्या नगरी जाने, का वे मार्ग बतायेंगे।
बन्धु भरत का समाचार भी, तुमको वहीं सुनायेंगे॥
नगर अयोध्या में फिर जाकर, बन्धु भरत से मिलना।
मेरा, लक्ष्मण अरु सीता का, कुशल क्षेम सब कहना॥

सीता हरण-समर असुरों का, आदि सभी कुछ कहना।
रूप-चेष्टा जैसी होगी, वह सब मुझसे ही कहना॥
फिर सन्देश राम का लेकर, हर्षित चले वीर हनुमान।
गुह से मिले दिये सन्देशा, उसने किया अधिक सम्मान॥

अति प्रसन्न श्री राम के स्वागत, को तैयार हो गया वह।
धूम धाम से जनता को भी, अपने साथ ले लिया वह॥
शृंगवेरपुर से वे चल कर, मैदानों की छटा देखते।
सई-आदि गंगा मज्जन कर, मन में वेद मन्त्र थे पढ़ते॥

पहुँचे नन्दि ग्राम में जाकर, देखा भरत वेश है मुनिवर।
सिर पर जटा, देह पर वल्कल, फल अहार व्रत रहे पूर्ण कर॥
है अधिकार राज्य का उनको, फिर भी चिन्ता युक्त हो रहे।
राम विरह में नयन अश्रु से, अविरल प्राण शरीर धो रहे॥

भरत समीप नवा कर मस्तक, मधुर वचन बोले हनुमान।
सकुशल राम-लक्ष्मण-सीता-मित्र सहित आ रहा विमान॥
श्रीराम आगमन श्रवण कर, नव जीवन संचार हो गया।
जानो चौदह वर्ष विरह का, जीवन बेड़ा पार हो गया॥

कहा भरत ने, अरे महाशय ! परिचय शीघ्र बताओ अपना।
बजरंगी हनुमान नाम है, पवन पुत्र अंजना के लालना॥
दीन बन्धु श्री रामचन्द्र का, मैं सेवक हूँ आया।
विनय भाव सुन भरत उठे हैं, सादर गले लगाया॥

भरत बन्धु अरु प्रजा वर्ग की, आग्रह किया सहर्ष स्वीकार।
प्रमुदि मन से कहा राम ने, करूँ निर्वहन कौशल भार॥

यह सुन कर सम्पूर्ण राष्ट्र में, आनन्द बाजे लगे बाजने।
राजतिलक दिन हुआ सुनिश्चित, दिव्य उपकरण लगे साधने॥

मुनि वशिष्ठ-जावालि-विजय अरु, बामदेव-कश्यप मुनि आये।
बाल्मीकि-कौशिक-कात्यायन, ऋषि अगस्त्य भी हैं आये॥
सब जीवनी औषधों के सत्व, सब प्रकार के रत्न अमूल।
सुन्दर वृक्ष लता की पत्ती, मनहर और सुगन्धित फूल॥

सुन्दर गंध-पुष्प मालाएं, जल थल में उत्पन्न पदार्थ।
शुक्ल वस्त्र-चन्दन सफेद-कर्पूर-दही-घृत-चर्म व्याघ्र॥
अक्षत-रत्न-वस्त्र-गोरोचन-भक्ष्य-भोज्य-फल कंदमूल धन।
चन्दन दिव्य उपानह उत्तम, सर्वोषधि से मिला सत्व वन॥

सर्वोषधि के शुद्ध सलिल से, रामचन्द्र को नहलाया।
रत्नों के पावन आसन पर, ऋषियों ने उनको बैठाया॥
प्रजाजनों की सम्मति से फिर, राजतिलक है किया गया।
विद्वानों की मधुर गिरा में, पाठ स्वस्तयन पढ़ा गया॥

माण्डलिक राजाओं ने फिर, हैं अमूल्य उपहार दिये।
प्रजा उमड़कर चली आ रही, हाथों में उपहार लिए॥
सबका पा सम्मान राम ने, ऋषि-मुनियों का पांव छुआ।
फिर तीनों माता का छूकर, पायी पावन दिव्य दुआ॥

हाथ जोड़कर किया प्रार्थना, अति विनम्र वाणी बोले।
सबके सम्मुख हृदय पटल का, दिव्य कपाट तुरत खोले॥
सबसे बड़ा लोक संग्राहक, राष्ट्र कार्य हो सका यहाँ।
देव-आर्य-वानर औ आसुर, राष्ट्र हो सके एक जहाँ॥

टिकी सभ्यता रही आसुरी, भोगवाद अरु भौतिक पर।
उसे किया निर्मूल सभी ने, वैदिक संस्कृति ध्वज फहराकर॥
ये ऋषि मण्डल-विप्र वृन्द ही, इसके पूर्ण नियामक हैं।
मेरे जीवन की गतिविधियों, के सब देव सुचालक हैं॥

यही सफलता का रहस्य है, पुनः प्रणाम हमारा है।
वैदिक राष्ट्र नहीं है मेरा, सारा राष्ट्र तुम्हारा है॥

बाह्य शक्ति के अनुशासन को, क्षात्र शक्ति स्वीकार है करता।
वही राष्ट्र होता है विजयी, और सफलता में है बढ़ता॥

मैं ऋषि मण्डल–विद्वन मण्डल, का अभिनन्दन करता हूँ।
उनके पावन आदेशों का, सादर पालन करता हूँ॥
इस वैदिक सांस्कृतिक राज्य के, मुनिवर सच्चे शासक हैं।
मैं हूँ मात्र उन्हीं का प्रतिनिधि, उनके आज्ञा पालक हैं॥

आप सबों की स्नेहिल छाया, वरद हस्त होगा मुझ पर।
शक्ति बढ़े कर्तव्य कर्म की, शुचि सुराज्य लाये वसुधा पर॥
महाराज सुग्रीव–विभीषण, प्रिय अंगद युवराज हमारे।
प्रवर वीर नल–नील महामति, जाम्बवान के रहे सहारे॥

गज–गवाक्ष अरु गवय–शरभ, के उपकारों को भूल न सकता।
मादनगंध सभी के प्रति मैं शत आभार प्रदर्शित करता॥
महावीर का आलिंगन कर, अहलादित बोले श्रीराम।
ये अंजनी कुमार–पवन सुत, तपः पूत–ब्रह्मचर्य ललाम॥

वीर–गदाधारी– पराक्रमी, परम पूज्य वैदिक विद्वान।
वानर युवा वीर दल नायक, है निर्माता श्रेष्ठ महान॥
बिना स्वेच्छा–बिना मुकुट के, वानर राष्ट्र कुशल सम्राट।
ऋषि अगस्त्य जीवन की पूँजी, सेवा धर्म प्रतीक विराट॥

इस विशाल सांस्कृतिक राज्य, के गुरूवर शिष्य वीर हनुमान।
मूल रूप से संस्थापक है, किस विधि इनका करूँ बखान॥
मैं कृतज्ञ आजीवन इनका, कैसे करूँ यहाँ धन्यवाद।
आर्यावर्त समग्र नागरिक, इनसे उऋण नहीं, निर्विवाद॥

इनका अति उपकार, साधना, अविरल सेवा औ तप त्याग।
याद आ गया कहते–कहते, सजल नेत्र बूढ़े अनुराग॥
कहा राम ने मात अंजना–पिता, पवन की कठिन साधना।
ऋषि अगस्त्य की सुदृढ़ साधना, को मेरी शत वार वन्दना॥

वानर वीरांगना दल की, सुधर नायिका को प्रणाम।
सेनाध्यक्ष नील की पुत्री, नाम पदमरागा ललाम है॥

धर्म बहिन ये महावीर की, ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ली।
धर्म बन्धु हनुमान अनुसरण, में आजन्म परीक्षा दी॥

वानर राष्ट्र समग्र घरों में, परम शक्ति उत्पन्न किया है।
इनकी अद्भुत तपश्चर्या से राक्षस को निर्मूल किया है॥
भाई भरत- लक्ष्मण- शत्रुघ्न, सीता-माताओ का तप।
अति अकथ्य है, हृदय मौन हो, जिसका करता है नित जप॥

मुझ सेवक को नहीं भुलाया चौदह वर्ष हृदय से अपने।
प्रजाजनों का परम ऋणी हूँ, पूरा करूँ सभी के सपने॥
इस शुभ अवसर पर सबका मैं, करता हूँ सादर अभिनन्दन।
धारण करूँ सदा मस्तक पर, सबके आदेशों का चन्दन॥

विघ्न विनाशक परमेश्वर का, स्तुति गान किया धन्यवाद।
अपना आसन ग्रहण किया है, सबके हृदय भरा अहलाद॥
महामहिम श्री राम चन्द्र के, नेत्र कृतज्ञ भार से नत थे।
वैदिक संस्कृति साम्राज्य के, ऋषि-मुनि पावन पूर्ण नखत थे॥

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वर्ष **2023 तथा 2024** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके।

-व्यवस्थापक

तपोभूमि पत्रिका या पुस्तकें मंगाने हेतु-

बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि,
जयसिंहपुरा, मथुरा
I F S C Code- IOBA 0001441
'सत्य प्रकाशन'
खाता संख्या- 144101000002341

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

गतांक से आगे–

वेद चतुष्टय

लेखकः हरिदत्त शास्त्री, सिरसागंज, जिला–फिरोजाबाद (उ0 प्र0)

4– चतुर्थ वरदान– पशुम का अर्थ होता है, घर में, परिवार में, समाज में दूध देने वाले पशु हों। पशुओं में गौ दुग्ध अमृत समझा जाता है। जो दुही जाती है, उसका नाम गाय है। गौ नाम पशु का है, जो दूध देती है। गाय का दूध पूर्ण भोजन माना गया है। गौ दुग्ध से स्वस्थ रहकर, वर्षों तक जीवन रहता है। वेद में गौ आदि पशुओं के महत्व, कृषि पर प्रकाश डाला गया है। पशु पालन से कृषि, अन्न, दूध, दही, घृत की कमी नहीं रहती है। माता नाम गौ का है, गौ नाम पृथिवी का है, गौ नाम इन्द्रियों का है, गौ नाम चन्द्रकान्ति का है। गौ नाम सूर्य की किरणों का है। जैसे गाय को दुहा जाता है, वैसे पृथिवी को अन्न, सोम, लताओं के लिए दुहा जाता है। अन्न, लता, सोम, वृक्ष, पौधे आदि पशुओं का आहार है।

5– पंचम वरदान– कीर्ति यश के लिए माता से मांगा जाता है। जीवन में यश का बहुत महत्व है। नतमस्तक होने पर माता–पिता–आचार्य–वृद्धजन आशीर्वाद देते हैं। **"यशस्वीभव"** यश वाले वनों। कीर्ति कमाओ। श्रेष्ठ मनुष्यों की यश–कीर्ति गाथा युगों–युगों तक अमर बनी रहती है। **"कीर्तियस्य सः जीवति"** कीर्तिवान यशपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। कीर्तिवान का जीवन–जीवन माना जाता है।

6– षष्ट वरदान– द्रविणं–धन के लिए वरदान मांगा जाता है। जो वेद माता के उपदेश–ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल, शिक्षा, स्वच्छता, पवित्रता ग्रहण करता है। उसे वेदमाता द्रविण–धन से सम्पन्न कर देती है। धन पाकर घमण्डी–अभिमानी न बने अपितु धन पाकर यशस्वी और वीर बने। वेदमाता का कथन है कि– "स्यामपतयोरयीणाम्" हम धन ऐश्वर्यों के स्वामी बने। वेदमाता का निर्देश है कि धनश्रम और निष्ठापूर्वक कमायें और उसका उपयोग सही ढंग से करें।

7– सप्तम वरदान– ब्रह्मवर्चसम्– ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य व्रत पालन– ब्रह्मवर्चस– ब्रह्मतेज से बल की प्राप्ति करें और ब्रह्म के सानिध्य में पहुँच। ब्रह्मवर्चस तेज के आगे सभी तेज फीके पड़ जाते हैं। तेजवान ब्रह्मचारी की जब ब्रह्मचर्य की भ्ऊर्ध्वगति हो जाती है, तब योगी की सिद्धि आत्मा–भोग–विलासों इच्छाओं–कामनाओं को दग्ध कर देती है। प्राण के द्वारा ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बनती है, तब ब्रह्मचर्य ऊँचा बनता है। जब अन्दर का तेल नहीं रहता तो बाहर के तेलों से क्या होगा। बाहर की चमक दमक अन्दर के ब्रह्मचर्य से फीके पड़ जाते हैं। संसार पदार्थों की चमक–दमक मनुष्य को तन तक ही आकर्षित करती है, जब तक उसकी आत्मा में प्रभु का प्रकाश अर्जित नहीं कर पाता है। **"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नतः"** ब्रह्मचर्य से देवता मृत्यु को भी जीत लेते हैं। ब्रह्मवर्चस तेज वेद ज्ञान से ही प्राप्त होता है। वेदमाता ब्रह्मचर्यव्रती बनने का आशीर्वाद दे। 1. आयुः, 2. प्राणं, 3. प्रजां, 4. पशुं, 5. कीर्ति,

6. द्रविणं, 7 ब्रह्मवर्चसम्। इन सप्तविध– सात वरदानों से वरदा वेदमाता– सब मानवों को तृप्त करती है। जो वेद माता की शरण में जाता है, उसे ही सात वरदान प्राप्त होते हैं। इसी से मान को सुख–शान्ति प्राप्त होगी। सप्त वरदानों से ब्रह्म का सानिध्य होगा।

मह्यमदत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्– सात वरदान प्राप्त कराकर परदा वेद माता मुझे ब्रह्मलोक प्राप्त कराइए। जहां इहलोक का मंगल मिलेगा, वहां मुझे परलोक का सर्वोपरि मंगल ब्रह्मलोक– परमानन्द का साक्षात्कार होगा। इहलोक के सात मंगलों के साथ ब्रह्मानन्द का आठवां मंगल समस्त कामनाओं के साथ आत्मा का मंगल होगा।

(16)

ओ३म्–सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायु स्तृतीयऽआदित्य चतुर्थे चन्द्रमाः पंचिमऽऋतुः षष्ठे मरूतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे। मित्रो नवमे वरूणो दशमऽइन्द्रऽएकादशे विश्वे देवा द्वादशे।।

–यजुर्वेद अध्याय 39 मन्त्र 6

ऋषिः–दीर्घतमाः। देवताः– सवितादयः। छन्द– विराड़धृतिः। स्वरः– धैवत।

वायु ऋषि द्वारा– यजुर्वेद का प्रकाशन–शरीर त्याग का वर्णन।

भावार्थ– शरीर त्यागने के बाद जीवात्मा किन–किन स्थानों में घूमता हुआ, कितने समय में योनि निर्धारण के बाद योनि धारण के बाद, किस योनि की माता के गर्भ में जीव प्रवेश करता है। इस विषय में महर्षि दयानन्द का कथन है कि– जब यह जीव शरीर को छोड़ता है, तब सूर्य प्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कार्यों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त होकर शरीर धारण कर उत्पन्न होता है। तभी पुण्य–पाप कर्म से सुख–दुःख रूप फलों को भोगता है। मृत्यु के बाद आत्मा जिन–जिन तत्वों में प्रवेश करता है उन तत्वों में उसका प्रवेश सूक्ष्म शरीर के मलों का प्रक्षालन होता है। बृहस्पति से पहले सभी तत्वों में आत्मा का प्रवेश मलों के मार्जन के लिए ही होता है।

1. प्रथमेअहनिसविता– प्रथम दिन में सविता में जीवात्मा का प्रवेश बिना किसी प्रयत्न के ही हो जाता है, क्योंकि सम्पूर्ण भू मण्डल में सूर्य की किरणें फैली हुई हैं, इसलिए सूर्य की किरणों में प्रवेश पाने में आत्मा को कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। भूमण्डल में फैली यह सूर्य की किरणें अग्नि के सहयोग से ही कार्य करती है। इसलिए सूर्य की किरणों में प्रविष्टि के साथ ही आत्मा का अग्नि से भी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। मलों के प्रक्षालन में अग्नि सबसे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है, इसीलिए **"अग्नि मीले पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्"** । ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 1 मन्त्र 1। इस मन्त्र के द्वारा अग्नि की बात वेद में कही गई है। मन्त्र का द्वितीय सम्बन्ध इस प्रकार है।

2. अग्निः द्वितीये– मृत्यु के दूसरे दिन जीवात्मा अग्नि में प्रवेश करता है। अग्नि तत्व मलों का भली भांति मार्जन हो जाने पर शुद्ध हुई आत्मा को ऊर्ध्वगति का अवसर प्राप्त हो जाता है। भू मण्डल से अन्तरिक्ष की ओर जाने का अवसर आत्मा को मिलता है। अन्तरिक्ष का अधिष्ठाता वेद वायु है। जब

जल तत्व का सविता और अग्नि वाष्प में बदल देते हैं तो वाष्प को वायु ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार सविता और अग्नि में मार्जिन आत्मा अंतरिक्ष में वायु तत्व में प्रवेश पा जाती है। वायुतत्व में प्रवेश पाने पर आत्मा के साथ लगे सूक्ष्म शरीर में स्थित प्राण तत्व का प्रक्षालन हो जाता है। अग्नि तत्व से सबका मार्जन होता है, सूक्ष्म मार्जन करने वाली अग्नि ही है। मन्त्र में यह बात इस प्रकार प्रदर्शित की गई है।

3. वायुस्तृतीये– जीवात्मा तृतीय दिवस वायु में प्रविष्ट होता है। सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा वायु में प्रवेश पाते ही वायु से होती हुई, आगे को बढ़ने वाली आदित्य की रश्मिमालाओं का आलिंगन कर लेता है। आदित्य की किरणों में तपता हुआ विशुद्ध होकर आगे को बढ़ता है।

4. आदित्यश्चतुर्थे– चौथे दिन आत्मा आदित्य की किरणों में प्रविष्ट हो जाता है। आदित्य की रश्मिमालाओं के बीच तपता हुआ सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा अब शान्ति प्राप्त करने की इच्छा से वायु मण्डल के ही किसी शीतल प्रदेश की कामना करता हुआ चन्द्रमा की किरणों में प्रविष्ट हो जाता है।

5. चन्द्रमा– पंचमे– पांचवें दिन जीवात्मा चन्द्र किरणों में प्रवेश करता है। तपने योग्य आवश्यक तत्वों में तप करके भ्रमण करता हुआ जीवात्मा चन्द्र किरणों के माध्यम से खुले वायु मण्डल में प्रवेश करता है। खुले वायुमण्डल में किसी न किसी ऋतु का होना स्वाभाविक है।

6. ऋतुः षष्ठे– मृत्यु के छठे दिन आत्मा ऋतु में प्रवेश करता है। ऋतु में प्रवेश करने से पूर्व सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा के सभी मलों का प्रक्षालन हो जाता है। अब आत्मा सूक्ष्म शरीर के तत्वों से सहयोग प्राप्त करके गर्भ में प्रवेश पाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए वह मरूत तत्वों से भी सम्बन्ध स्थापित करता है। मरूत तत्वों की संख्या 49 मानी गई है। ब्यालीस प्रकार की वायु अति उत्तम हैं। सात प्रकार की वायु विनाश कारक हैं। इन वायु में विद्युत का भी मेल रहता है। गर्भ में प्रविष्टि के लिए आत्मा ऋतु मण्डल से निकल कर मरूत तत्व के सम्पर्क में आता है। वेद में आगे इसे इस प्रकार कहा है।

7. मरूतः सप्तमे– सप्तम दिन जीवात्मा मरूत में प्रविष्ट होता है। सूक्ष्म शरीर से युक्त आत्मा का मरूत तक पहुँचते-पहुँचते जो भी शोधन हुए, यह सब भौतिक शोधन थे। जीवात्मा को किस माता के गर्भ में प्रवेश करना है और अपने किये कर्मों के फल भोगने के वास्ते, स्वयं परमपिता परमेश्वर बृहस्पति आत्मा को अपने नियन्त्रण में कर लेते हैं।

8. बृहस्पतिः अष्टमे– अष्टम दिन आत्मा बृहस्पति में प्रवेश करता है, यानि परमात्मा के नियन्त्रण में हो जाता है। परमात्मा-जीवात्मा के सूक्ष्म तत्वों के साथ स्थूल तत्वों को मिलाकर गर्भ में प्रविष्ट होने योग्य बना देते हैं।

9. मित्रों नवमे व 10. वरूणे दशवें– जीवात्मा नवमे दिन मित्र से और दशवें दिन वरूण से मिल जाता है। प्राण और उदान को मित्र और वरूण नामों से कहा है। शरीर को चलाने में प्राण तत्व मुख्य हैं। सूक्ष्म शरीर के प्राण तत्व को स्थूल शरीर से कायम रखने के लिए बाह्य प्राण तत्व की सहायता लेनी पड़ती है। प्राण और उदान के सम्पर्क से गर्भ में स्थूल शरीर का विकास होने लगता है। इस प्रकार

ईश कृपा से आत्मा शक्ति को प्राप्त करता है। मित्र और वरूण के सहयोग से आगे बढ़ते हुए जीवात्मा को इन्द्र अर्थात् विद्युत शक्ति का सहयोग प्राप्त होता है, तब आत्मा जाग उठती है।

11. इन्द्र एकादशे– ग्यारह दिन में आत्मा इन्द्र अर्थात् विद्युत की ज्योति में प्रकाश करता है। सूक्ष्म शरीर के साथ सूक्ष्म महाभूतों का सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर स्थूलाकार हो जाता है और माता के गर्भ में रहने की क्षमता जीवात्मा में आ जाती है, और इसके लिए आत्मा को अब सब देवों का सहयोग मिलने लग जाता है।

12. विश्वेदेवा द्वादशे– बारहवें दिन जीवात्मा पृथ्वी आदि देवों में प्रविष्ट हो जाता है, इस प्रकार सूक्ष्म शरीर की बारह स्थितियों और अवस्थाओं में अन्तर जीवात्मा पूर्ण स्थूल शरीर के त्यागने के बारहवें दिन में माता के गर्भ में प्रवेश पा जाता है। मृत्यु के बाद जीवात्मा की दशाओं का चित्रण है। गर्भाशय में जीव का भ्रूणावस्था में प्रतिदिन के क्रम से– 1. सविता, 2. अग्नि, 3. वायु, 4. आदित्य, 5. चन्द्रमा, 6. ऋतु, 7. मरूतः, 8. बृहस्पति, 9. मित्र, 10. वरूण, 11. इन्द्र, 12. विश्वदेव। इन सब देवों से शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, यह दर्शाया गया है, पुनः उसका विकास उत्तरोत्तर उक्त देवों की शक्तियां करती हैं, यह जानना आवश्यक है इसका वर्णन आयुर्वेदिक चरक ग्रन्थ में भौतिक देवों की शक्तियाँ दर्शायी गयी हैं। चरक शरीर गर्भाधान स्थान 5161 जितने ही लोक में विशेष पदार्थ देव रूप से हैं, उतने पुरुष शरीर में हैं। जैसे– 1. लोक में प्रजापति है, वह शरीर में बुद्धि, 2. लोक में जो इन्द्र है, वह शरीर में अहंकार। 3. लोक में आदित्य है, वह शरीर में आदान–रसादान शक्ति। 4. लोक में रूद्र है, वह शरीर में शेष क्रोध। 5. लोक में सोम है, वह शरीर में प्रसाद शान्त भाव। 6. लोक में वसु है, वह शरीर में सुख। 7. लोक में अश्वनी वह शरीर में कान्ति है। 8. लोक में मरूत है, वह शरीर में उत्साह। 9. लोक में विश्वदेव है? शरीर में समस्त इन्द्रियाँ। 10. इन्द्रियाँ के लोक में तम अन्धकार है, वह शरीर में मोह है। 11. लोक में ज्योति है, शरीर में ज्ञान है। 12. लोक में सर्गादि है, शरीर में गर्भाधान है। इस प्रकार बारह समान नामों तथा पर्याय नामों से गर्भ में देवों का स्थान दर्शाया गया है।

समाधान– कुछ काल से पूर्वजों ने बारह दिन की भावना बनाई इसी भावना को लेकर पगड़ी की रस्म तेरहवें दिन की जाती है। ऐसा विचार समाज ने बना लिया और पगड़ी की रस्म के साथ तेरहवीं की प्रथा प्रारम्भ कर दी। जो समाज में प्रथा नितान्त गलत है। तेरहवीं का आयोजन नहीं करना चाहिए।

–(शेष अगले अंक में)

महापुरुष की पहचान

शिष्यों ने गुरुजी से पूछा कि महापुरुष में और महान पुरुष साधारण पुरुष में क्या अन्तर है? गुरुजी बोले–"लोग पैसे वाले को महापुरुष समझते हैं, जबकि व्यक्ति महान पैसों से नहीं, अपितु शिष्ट, शालीन और विनम्र होने से कहलाता है। जैसे फलों के आने पर वृक्ष झुक जाते हैं, पानी से भर जाने पर बादल नीचे आ जाते हैं, वैसे ही महापुरुष समस्त ज्ञान का भण्डार होते हुए भी विनम्र होते हैं।"

गतांक से आगे–

विष–चिकित्सा

लेखक: स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयन्मित्रश्च वरुणश्च। वातापर्जन्यो3भा॥ 16॥

अर्थ– (इन्द्रः) विद्युत् (च) और (मित्रः) सूर्य (च) और (वरुणः) जल (उभा वातापर्जन्या) दोनों वायु का झोंका और मेघ (मे) मेरे (अहिम्) सर्प को–सर्पविष को (अरन्धयत्) नष्ट करता है।

विद्युत् की चमक में, सूर्य की प्रचण्ड धूप में, जल–प्रवाह के बीच में, वायु के झोंके में, मेघ के गर्जनकाल में काटने पर सर्प का विष प्रभाव नहीं करता, ऐसा सूचित होता है।

श्लेष से अन्यार्थ–

(इन्द्रः) इन्द्रायण (च) और (मित्रः) अतिविष–अतीस (च) और (वरुणः) बरना (उभा वातापर्जन्या) हो 'वातक' गोकर्णी' मूर्वाकन्द, और 'पर्जन्या' दारुदरिद्रा–दारुहल्दी (मे) मेरे–मेरे ऊपर आक्रमण कर काटने वाले (अहिम्) सर्प को–उसके विष को, (अरन्धयत्) नष्ट करता है।

उपर्युक्त अतीस आदि औषधियों को आयुर्वेदिक निघण्टुओं में विषनाशक बताया है, केवल वरुण अर्थात् बरना को विषनाशक तो नहीं कहा, परन्तु पित्तनाशक और शिरोरोगनाशक तथा हृदयरोग का नाशक कहा है। हो सकता है, इन सबका योग यहाँ अभीष्ट हो और यह सर्पविष का नाशक हो।

इन्द्रो मेऽहिमरन्धयत् पृदाकुं च पुदाक्वम्।
स्वजं तिरश्चिराजिं कसर्णीलं दशोनसिम्॥ 17॥

अर्थ– (इन्द्रः) विद्युत् या इन्द्रायण ओषधि (मे) मेरे ऊपर आक्रमण करने वाले (पृदाकुम्) पृदाकु नामक या फुंकारने वाले (अहिम्) सर्प को (च) और (पृदाक्वम्) पृदाकु सांपन या फुंकारने वाली सांपन को (स्वजम्) स्वज नामक या लिपटने वाले सर्प को (तिरश्चिराजिम्) तिरश्चिराजि नामक या तिरछी रेखाओं वाले सर्प को (कसर्णीलम्) कसर्णी या कुत्सित सरणी को प्राप्त कराने वाले (दशोनसिम्) दशोनसिम या दश इन्द्रियों या दश प्राणों को क्षति पहुचाने वाले सर्प को (अरन्धयत्) नष्ट करता है।

इन्द्रो जघान प्रथमं जनितारमहे तव।
तेषामु तृह्यमाणानां कः स्वित्तेषामसद्रसः॥ 18॥

अर्थ– (अहे) हे सर्प ! (तव) तेरे (जनितारम्) उत्पादक महासर्प तक्षक को–उसके विष को भी (इन्द्रः) विद्युत् या इन्द्रायण ओषधि ने (प्रथमम्) प्रथम (जघान्) नष्ट किया है (तेषाम्–उ) उन्हीं

(तृह्यमाणानाम्) हिंसित या विनष्ट किये जाते हुओं (तेषां कः स्वित्) का कौन-सा (मसः असत्) विष है, कुछ नहीं है।

विद्युत्-तथा इन्द्रायण ओषधि के द्वारा महासर्प और उसके विष को नष्ट किया जा सकता है।

सं हि शीर्षाण्यग्रभं पौजिंष्ठ इव कर्वरम्।
सिन्धेर्मध्यं परेत्य व्यनिजमहेर्विषम्॥ 19॥

अर्थ- (शीर्षाणि) सर्पों के शिरों को (हि) अवश्य (समग्रभम्) मैं पकड़ता हूँ (सिन्धोः मध्ये परेत्य) नदी के बीच में अवगाहन करके (पौंजिंष्ठ इव कर्वरम्) जैसे तटनिवासी अपने मलिन शरीर को शुद्ध कर लेता है। ऐसे (अहेः-विषं व्यनिजम्) सर्प के विष को शुद्ध कर लेता हूँ।

इस मन्त्र से कई बातें सूचित होती हैं-सर्प का सिर पकड़कर उसका विष निकाल देने से सर्प विषदोष से रहित हो जाता है। पुनः उसके काटने से विष नहीं चढ़ता। दूसरे, सर्प को शिर से पकड़कर नदी में बहा देने से उसका विष ढीला हो जाता है। तीसरे, सर्प के काट जाने पर उसे शिर से पकड़कर दण्ड देना और नदी में कूद पड़ना चाहिये।

अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धवः।
हतास्तिरश्चिराजयो निपिष्टासः पृदाकवः॥ 20॥

अर्थ- (सिन्धवः) नदियां (सर्वेषाम्-अहीनाम्) समस्त सर्पों के (विषम्) विष को (परावहन्तु) दूर करती हैं (तिरश्चिराजयः) तिरछी धारी वाले सर्प (हताः) मर जाते हैं-निर्विष हो जाते हैं (पृदाकवः) फुंकारने वाले सर्प (निपिष्टासः) पीसे हुये-से हो जाते हैं।

सर्प के काटने पर तुरन्त नदियों में नहाने, डुबकी लगाने, तैरने आदि से विष उतर जाता है, नष्ट हो जाता है तथा नदियों सर्पों को भी निर्विष कर देती हैं।

ओषधीनामहं वृण उर्वरीरिव साधुया।
नयाम्यर्वतीरिवाहे निरैतु ते विषम्॥ 21॥

अर्थ- (अहम्) मैं (ओषधीनाम्) ओषधियों में से (साधुया) उत्तम ओषधियों को (उर्वरीः-इव) उपजाऊ भूमियों की भांति (वृणे) चयन करता हूं। पुनः उन्हें (अर्वतिः-इव) घोड़ियों की भांति (नयामि) सर्प-काटे मनुष्यों के शरीर में हांकता हूं-पहुंचाता हूं। अतः (अहे) हे सर्प ! (ते विषम्) तेरा विष (निरःआ-एतु) बाहर निकल आवे- वमन-विरेचन आदि द्वारा दूर हो जावे।

यदग्नौ सूर्ये विषं पृथिव्यामोषधीषु यत्।
कान्दाविषं कनक्नकं निरैत्वैतु ते विषम्॥ 22॥

अर्थ- (यत्) जो (अग्नौ) अग्नि में (सूर्ये) सूर्य में (विषम्) विष है (पृथिव्याम्) पृथिवी में

(ओषधीषु) ओषधियों में (यत्) जो (कान्दाविषम्) कन्दसम्बन्धी विष है (कनक्वकम्) चमकता हुआ खनिज टंकण–सुहागा आदि है वह (निर–आ एतु) सर्पविष को साथ लेकर निकले। एवं (ते विषम्) तेरा सर्पविष (आ–एतु) बाहर आवे।

अग्नि आदि वस्तुओं में विष को कहना, उने तीव्रतर गुण का नाम है। जो विष पर प्रभाव डालता है। अग्नि में जलाने, सूर्य में सुखाने और पृथिवी में चूसने की शक्ति है। अतः सर्पविष को इनकी शक्तियां जला, सुखा और चूस सकती हैं। एवं ओषधियों, कन्दों और खनिज पदार्थों में भी हो सकती है, यह सूचित किया गया है।

ये अग्निजा ओषधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आबभूवुः।
येषां जातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमसा विधेम।। 23।।

अर्थ– (ये) जो (अग्निजाः) अग्नितप से उत्पन्न (ओषधिजाः) औषधियों के रस से उत्पन्न (ये) जो (अप्सुजाः) जलों से उत्पन्न (विद्युतः आ बभूवुः) विद्युत के घर्षण से उत्पन्न हुए (अहीनाम्) मेघरूप दिव्य सर्प हैं (येषां जातानि) जिनके जन्म–उत्पत्तिभेद (बहुधा महान्ति) बहुत भारी हैं (तेभ्यः सर्पेभ्यः) उन मेघरूप सर्पों के लिए (नमसा विधेम) स्वागत करते हैं।

श्लेष से अन्यार्थ–

(अहीनाम्) सर्पों में (ये) जो (अग्निजाः) अग्नि के समान जलाकर काला कर देने वाली विषशक्ति से उत्पन्न हुए (ओषधिजाः) अन्दर से दाह उत्पन्न कर देने वाली विषशक्ति से उत्पन्न हुए (ये) जो (अप्सुजाः) जलों में डूबे जैसे तुरन्त कर देने वाली विषशक्ति से उत्पन्न हुए (विद्युतः–आबभूवुः) विद्युत् गिरने के समान निश्चेष्ट कर देनी वाली विषशक्ति से उत्पन्न हुए सर्प हैं (येषाम्) जिनके (जातानि) जातिभेद या शरीर (बहुधा) प्रायः (महान्ति) महान हैं। (तेभ्यः सर्पेभ्यः) उन सर्पों के लिए (नमसा) विष से–स्थावर विष से (विधेम) प्रतिकार करें।

तौदी नामासि कन्याघृताची नाम वा असि।
अधस्पदेन ते पदमा ददे विषदूषणम्।। 24।।

अर्थ– (तौदी नाम–असि) तू तौदी नाम औषधि है (वा) अथवा (कन्या घृताची नाम–असि) कन्या या घृताची नाम से प्रसिद्ध है वह ऐसी औषधि बड़ी इलायची है (अधस्पदेन) नीचे भूमि में गये जड़ के साथ (ते) तेरे (विषदूषणं पदम्) विषनाशक मूल को (आददे) लेता हूं।

कन्या और घृताची–ये दोनों नाम ज्यों के त्यों बड़ी इलायची के लिए आयुर्वेदिक निघण्टु में दिए हैं–**"स्थलैलाबृहदेला त्रिपुटा त्रिदेवोदभवा च भद्रैला। सुरभित्वक् च महैला पृथ्वी कन्या कुमारिका चैन्द्री। कायस्था गोपुटा कान्ता घृताची गर्भ सम्भवा।।"** (राज निघण्टु। 1–2) परन्तु 'तौदी' नाम बड़ी इलायची का आयुर्वेदिक ग्रन्थों में नहीं दिया है। हाँ, 'तौदी' का पर्याय तो 'ऐन्द्री' नाम उक्त राजनिघण्टुवचन

में दिया है। 'तोदू' शब्द इन्द्र के लिये वेद में आया है-"**यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः।**" (ऋ0 4/16/11)। यहां पांचवें मन्त्र "**ववक्ष इन्द्रो.....**" (म. 5) से इन्द्र के सम्बन्ध में वर्णन चला आ रहा है तथा पूर्वोक्त ग्यारहवें मन्त्र में 'तोद' को 'हर्योरीशानः' दो हरिनामक अश्वों का नियन्त्रण करने वाला या स्वामी कहा है और "**हरी इन्द्रस्य आदिष्टोपयोजननामानि**" (निघ0 1/15) 'हरी अर्थात् हरिनामक दो अश्व इन्द्र के होते हैं, यह कहा है। इस प्रकार 'तोद' इन्द्र का पर्याय हो जाने से वेद का 'तौदी' का अर्थ बड़ी इलायची हुआ। एवं कन्या, घृताची, तौदी, तीनों नाम बड़ी इलायची के हुए। बड़ी इलायची विषनाषक है। "**स्थूलैला कटुका पाके रसे चानलकृल्लघुः। रूक्षोष्णा श्लेष्मपित्तास्रकण्डुश्वासतृषपहा। हृल्लासविषस्त्यास्यशिरोरुग्वमिकासनुत्।।**" (भावप्रकाश नि0) सर्पविषचिकित्सा के लिये बड़ी इलायची की नीचे की भूमि में गई समूची जड़ लेनी चाहिये। ऐसा मन्त्र में सूचित किया है।

अंगादंगात्प्रच्यावय हृदय परि वर्जय।
अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते।। 25।।

अर्थ- (अंङात्-अंङात्) अंग-अंग से (प्रच्यावय) रक्त को निकालो (हृदयं परिवर्जय) हृदय को छोड़ दो (अध) अनन्तर (विषस्य) विष का (यत्) (तेजः) जो वेग है-जोर है (तत्) वह (ते) तेरा (अवाचीनम्) नीचे (एतु) आवे।

रक्तमोक्षण चिकित्सा-

सर्प काटे का विष शरीर में फैल गया हो, तो उसका वेग शान्त करने के लिए हृदय को छोड़कर स्थान-स्थान से शिराछेदन कर रक्त निकाल देना चाहिये, ऐसा मन्त्र में कहा है। 'चरक' ने भी हृदय मर्म को छोड़कर रक्त निकालना बतलाया है-"**उद्धरेन्मर्मवर्जं वा**" (चरक। विष चि0 अ0 2/36) शिराओं से रक्त बाहर निकल जाने पर विष तथा विष का वेग भी बाहर निकल जावेगा। रक्त बाहर निकलने से शरीर में निर्बलता अचेत होने से से प्रतीत न होगी तथा उस समय इसकी चिन्ता भी न करनी चाहिये, क्योंकि वह रक्त भी तो विषभरा ही है। विषवेग रक्त निकल जाने से शान्त होकर जीवन तो बच जायगा और निर्बलता तो पुनः दूर हो ही जायेगी। विष फैलकर बेहोशी हो जाने पर 'शिराच्छेदन कर रक्त निकालने का प्रतिपादन 'सुश्रुत' में किया है-"**न अनंजं विवृताक्षं भगनग्रीवं विरेचनैः चूर्णैः प्रच्छन्नैस्तीक्ष्णैर्विषा समुपाचरेत्।। ताडयेच्च शिराः क्षिप्रं तस्य शाखाललाटजाः।।** (सुश्रुत। कल्प0 5/42,43) यहां भुजाओं, टांगों और ललाट की शिराओं का छेदन कर रक्त निकालने को कहा है।

-(शेष अगले अंक में)

शंकर के प्यारे बनो, वैर विरोध विसार।
वैदिक वीरो जाति का, कर दो सर्व सुधार।।

पारस्परिक व्यवहार

–लेखकः रघुनाथ प्रसाद पाठक

माता–पिता, भाई–बहिन इत्यादि का व्यवहार कौटुम्बिक व्यवहार कहलाता है। इस व्यवहार के सम्बन्ध में 'वेद' में निम्न प्रकार शिक्षा दी गई है–

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमनाः,
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवान्।
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा,
सम्यंचः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

अर्थात्– 'पुत्र पिता का आज्ञाकारी और माता का इच्छाकारी हो तथा स्त्री पति से मधुर और शान्त वाणी से बातचीत करे। भाई से भाई द्वेष न करे और न बहिन बहिन से ही ईर्ष्या करे। सब लोग अपनी 2 मर्यादा में रहकर सदैव आपस में भद्र भाषा से ही बातचीत करें, कैसा सुन्दर कौटुम्बिक व्यवहार है।

यदि इस शिक्षा के अनुसार भाई और बहिनों में आपस में प्रेम हो तो इस से बढ़कर उनका और कोई सौभाग्य नहीं हो सकता। पारस्परिक प्रेममय व्यवहार से बहुत से मनोमालिन्य और त्रुटियाँ अनायास ही तिरोहित हो जाया करते हैं।

भ्रातृप्रेम के कतिपय ऐतिहासिक उदाहरण

हमारे इतिहास में भ्रातृ–प्रेम के बहुत उत्तम उदाहरण मिलते हैं। उनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। रामायण में भरत और लक्ष्मण के, राजपूताने के गौरवमय प्राचीन इतिहास में महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह के भ्रातृ–प्रेम की कहानी को पढ़ और सुनकर श्रद्धा से हमारा मस्तक उनके चरणों में झुक जाता है।

महाराणा प्रताप का मुगल–सम्राट् अकबर के साथ उस समय तक युद्ध जारी रहा था जब तक उन्होंने उदयपुर को स्वतन्त्र नहीं कर लिया था। दुर्भाग्य से उनमें और उनके भाई शक्तिसिंह में मनोमालिन्य हो गया। शक्तिसिंह अकबर से जा मिला। शत्रु के भाई को अपने पक्ष में देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ और उसका बड़ा सम्मान किया। शक्तिसिंह से सलाह करके अकबर ने महाराणा पर चढ़ाई की और शक्तिसिंह भी युद्ध–क्षेत्र में गया। महाराणा उस युद्ध में हार गये और उनके एक स्वामिभक्त सेवक ने स्वयं महाराणा का वेष धारण करके उन्हें युद्ध–क्षेत्र से बाहर निकाल दिया। यह मालूम होने पर अकबर के सैनिकों ने महाराणा का पीछा किया और वे शक्तिसिंह को भी अपने साथ ले गये जिससे वे अपने भाई महाराणा प्रताप को पहचान सकें। सैनिकों ने महाराणा को पकड़ लिया और उन्हें मार डालना चाहा। शक्तिसिंह से यह देखा न गया। उनका भ्रातृ–प्रेम उमड़ आया। उन्होंने

तत्काल तलवार खींचली और उन दोनों सैनिकों को मार गिराया। महाराणा प्रताप अपने विरोधी भाई के इस व्यवहार पर मुग्ध हो गये। उनका हृदय भर आया। दोनों भाई गले मिले और दोनों का विरोध प्रेम-अश्रुओं में विलीन हो गया।

इस शिक्षा का भाव यह है कि भाई और बहिनों के हृदयों में परस्पर में किसी प्रकार का द्वेष नहीं होना चाहिए वरन् उनमें अत्यन्त प्रेम होना चाहिए। माता-पिता को शिक्षा और व्यवहार के द्वारा अपनी सन्तानों में इस प्रेम की रक्षा और वृद्धि करनी चाहिए।

रामायण से स्पष्ट है कि माताएँ किस प्रकार इस सम्बन्ध में अपने दायित्व की पूर्ति किया करती थीं और अपने सन्तानों में प्रेम और सेवा के उत्कृष्ट भावों को भरा करती थीं।

"राम-रावण युद्ध में लक्ष्मण घायल हो गये थे। हनुमान उनके लिये औषध ले जा रहे थे। मार्ग में भरत से उनकी भेंट हुई। हनुमान से यह ज्ञात होने पर कि वे राम के प्रिय अनुचर हैं और लक्ष्मण के लिये औषध ले जा रहे हैं, भरत बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें माताओं के निकट ले गये। माताओं ने हनुमान से राम, लक्ष्मण और सीता का हाल पूछा। जब वे कुछ देर ठहरने के बाद माताओं से आज्ञा मांगकर विदा होने लगे तब सुमित्रा और कौशल्या ने राम के लिये सन्देश दिये। वे सन्देश स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

सुमित्रा का सन्देश

"प्रिय राम ! लक्ष्मण को माता-पिता ने वन जाने की आज्ञा नहीं दी थी। वह तुम्हारी सेवा के लिये ही तुम्हारे साथ वन को गया था। मैंने उसे कहा था कि तुम राम को दशरथ और सीता को मेरे स्थान पर समझना और उनकी माता-पिता के समान सेवा करना। सेवा में यदि तुम्हारे प्राणों की भी जरूरत पड़ जाय तो तुम सहर्ष उन्हें दे देना। जो औषधि हनुमान ले जा रहे हैं। यदि उससे भी लक्ष्मण के प्राण न बचें और वह मर जाय तो तुम दुखी मत होना वरन् यह सोचकर खुश होना कि लक्ष्मण ने सेवक की उच्च से उच्च गति प्राप्त की है।"

कौशल्या का सन्देश

"प्रिय राम ! मैंने तुम्हें वन को अकेला नहीं भेजा था। मैंने लक्ष्मण को भी तुम्हारे साथ भेजा था। यदि दैवयोग से लक्ष्मण की मृत्यु हो जाय तो तुम अयोध्या को मत लौटना।"

वस्तुतः ये देवियां प्रेम और कर्त्तव्य की सजीव मूर्तियाँ थीं। परिवारों में ऐसे ही माता-पिताओं और भाई-बहिनों से प्रसन्नता रहती है।

साधारण व्यवहार

गृहस्थ के लोगों को वृद्धों का सम्मान करना चाहिये। वृद्ध दो प्रकार के होते हैं। एक विद्या से दूसरे आयु से। ब्राह्मण विद्या से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धन-धान्य से और शूद्र आयु से वृद्ध होता है। विद्या में जो वृद्ध होता है वह श्रेष्ठ होता है, अर्थात् विद्वान् और गुणवान व्यक्ति अधिक सम्मान का अधिकारी होता है।

मनुष्य को व्यवहार में किसी प्रकार का भेदभाव न रखने वाला होना चाहिए। भेद बढ़ते ही तब हैं जब हम भीतर ही भीतर उन्हें बढ़ाते हैं। भेदों के दूर करने की सब से सुगम रीति यह है कि जब भेद की बात पैदा हो जाय तब सम्बन्धित व्यक्ति पर भेद स्पष्ट कर दिया जाय। इस प्रकार वास्तविक बात बतला देने पर मामला आसानी से समाप्त हो जायगा। भेद-भाव सन्देहों से बढ़ा करते हैं, जब सन्देह दूर हो जायँ तब भेद भाव बढ़ने की गुंजाइश रह ही नहीं सकती।

वेद में साधारण व्यवहार के सम्बन्ध में जो उत्तम शिक्षाएँ दी गई हैं उनमें से एक दो शिक्षाओं पर हम विचार करते हैं। वेद में एक शिक्षा इस प्रकार दी गई है-

येन देवा न वि यन्ति नो च वि द्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ अथर्व0 3/30/4॥

अर्थात्- जिस प्रकार के व्यवहार से विद्वान् पृथक् भाव वाले नहीं होते और न आपस में द्वेष करते हैं, वही व्यवहार तुम्हारे घर के लिये निश्चित करता हूँ। गृहस्थों को भली प्रकार सावधान किया जाता है कि मेल से वृद्धि करें।

शिक्षा का भाव यह है कि गृहस्थ के नर-नारी विद्वानों का अनुकरण करते हुए परस्पर में द्वेष न करें और न अपनी 2 ढपली और अपने 2 राग वाले बनें।

एक दूसरी शिक्षा में बतलाया गया है कि-

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्येऽन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥ अथ0 3/30/5॥

अर्थात्- हे गृहस्थो ! तुम उत्तम विद्यादि गुणयुक्त, ज्ञानवान् और धुरन्धर विद्वान् होक विचरते रहो और परस्पर मिल, धन-धान्य, राज्य-समृद्धि को प्राप्त होते हुए पृथक् 2 विरोधी भाव मत रखो। एक दूसरे के लिए सत्य मधुर वाणी बोलते हुए एक दूसरे को प्राप्त होओ। मैं समान लाभालाभ से एक दूसरे का सहायक एक जैसे विचार वाला तुमको करता हूँ।

इस शिक्षा का भाव सामाजिक उन्नति है। प्रत्येक विद्वान् गृहस्थ अन्यों के लाभ के साथ 2 ही अपना लाभ करे और सब मिलकर ऐश्वर्य प्राप्त करें। एक दूसरे से मधुर भाषण करें और एक जैसे विचार रखते हुए एक दूसरे के सहायक बनें।

एक तीसरी विश्वप्रेम की सुनहरी शिक्षा इस प्रकार दी गई है-

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥ अथर्ववेद0 3/31/6॥

अर्थात्- हे मनुष्यो ! तुम्हारा जल पीने का स्थान एक-सा हो, तुम्हारा खान-पान साथ हुआ करे, तुम्हें समान जुए के साथ नियुक्त करता हूँ जैसे धुरी के चारों ओर अरे हों इसी प्रकार सब मिलकर सम्यक् रीति से अग्नि का सेवन करें अर्थात् यज्ञादि व्यवहार करें।

एक और शिक्षा इस प्रकार दी गई है-

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवामृतं रक्षमाणः सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु।। 3/31/7॥

अर्थात्– हे मनुष्यो ! तुमको एक दूसरे का सहायक, एक जैसे विचार वाला, एक ही कृत्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाला, सब को एक दूसरे के उपकार में नियुक्त करता हूँ। विद्वानों के समान अमृत की रक्षा करते हुए मन का शुद्ध भाव हो।

यह शिक्षा सामाजिकोन्नति की एक और उत्तम शिक्षा है। भाव यह है कि सब मनुष्य एक विचार रखते हुए एक दूसरे के सहायक, मिलकर एक कृत्य में लग जाने वाले, प्रातः और सायं शुद्ध भाव रखते हुए, लोक और परलोक के सुख की रक्षा करें।

समस्त मनुष्यों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करने की आज्ञा के बाद वेदों में अच्छी तरह कह दिया गया है कि मनुष्यों के साथ ही नहीं प्रत्युत प्राणीमात्र के साथ प्रेम, दया और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिये। वेद उपदेश करते हैं–

(1) **यो वै कशाया सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति।**
ब्राह्मणश्च राजन्यं च धेनुश्चानड्वाँश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम्।।
–अथर्ववेद 2/1/23॥

(2) **दृते दृंह मा। मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।**
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।
–यजुर्वेद 36/18॥

अर्थात्– ब्राह्मण, क्षत्रिय, धेनु, बैल, धान्य, यव और मिठाई ये सात मिठाइयाँ हैं जो मनुष्य ज्ञान के इन सात मधुओं (मिठाइयों) को जानता है वह मधुमान् अर्थात् मधुर हो जाता है।

हे दृष्टि स्वरूप परमात्मा ! मेरी दृष्टि को दृढ़ कीजिये, जिससे सब प्राणी मुझे मित्रदृष्टि से देखें और हम सब प्राणी परस्पर एक दूसरे को मित्रदृष्टि से देखें।

ऊपर बतलाये हुए समस्त व्यवहारों के रहस्य को ठीक–ठीक समझने के लिये मनुष्य अपने तथा समाज के सम्बन्धों को ठीक 2 समझ लेवे। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के बिना वह रह ही नहीं सकता। व्यक्ति और समाज में अटूट सम्बन्ध है। व्यक्ति और समाज दोनों के उत्तम होने में ही दोनों का कल्याण है। ऊपर की शिक्षाओं में यही बतलाया गया है कि किस प्रकार के आचरण से व्यक्ति और समाज इस उत्तमता में योग दे सकते हैं। मनुष्य का सम्बन्ध दम्पत्ति, कुटुम्ब, जाति, समाज और समस्त संसार के मनुष्यों तथा प्राणीमात्र से है। इन सम्बन्धों की श्रेष्ठता का रहस्य सब के साथ प्रेम, दया और सहानुभूति का आचरण है।

हिन्दू जाति की त्रुटि

परिवार और जातियाँ मिलकर तब ही रहा करती हैं जब उनका लक्ष्य एक हो। हिन्दू जाति की त्रुटि यही है कि हिन्दुओं का कोई समान लक्ष्य नहीं है। यदि करोड़ों जिह्वाओं से 'ओं ख ब्रह्म' का उच्चारण होता तो आज उनकी दशा कुछ और ही होती। यहाँ तो 33 करोड़ देवता हैं। व्यक्ति हैं, जाति नहीं हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है। ❁

आर्य

लेखक:– चिम्मनलाल वैश्य

आर्य शब्द ऋगतौ धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र द्वारा 'णयत्' प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है। ऋग्वेद में मनुष्य की गणना आर्य और दास नामों से की है। यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 32 में लिखा है कि जिस राजा के सब आर्य रक्षक और आज्ञा पालक हैं वहाँ सब प्रकार के आनन्द रहते हैं। वशिष्ठ स्मृति में लिखा है कि जो कर्तव्य कर्मों का सेवन और अकर्तव्य कर्मों का परित्याग करता है वह आर्य है। महाभारत आदि पर्व में लिखा है कि जो शांतिचित्त रहते हैं, बैर को नहीं बढ़ाते, घमण्ड नहीं करते, उद्योग से कार्य करते हैं, गिरी दशा में भी चोरी आदि कार्य नहीं करते और अपने सुख में हर्षित तथा दूसरों के दु:ख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य हैं।

जिस देश में हम रहते हैं उसका नाम आर्यावर्त्त है। यही नाम पुराने शास्त्रों तथा अन्य संस्कृत पुस्तकों में दिया हुआ है। इसको आर्यावर्त्त इसलिए कहते थे कि यहाँ आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष रहते थे। एक समय था जब हमारा यह पवित्र देश सब देशों से बढ़ा चढ़ा था। ज्ञान का सूर्य सबसे प्रथम यहीं उदय हुआ था। यहाँ के ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल और आचार व्यवहार का सभी अन्य देश अनुकरण करते थे। इस देश के सदृश अन्य कोई देश नहीं है। इसका नाम सुवर्णभूमि है। सृष्टि के आदि में आर्य पुरुष यहीं जन्मे। यही सुजला, सुफला, शस्य श्यामला भूमि ही पारसमणि है। लोह रूपी दारिद्रय, पुरुषार्थ पूर्वक इस भूमि का उचित उपयोग कर धनाढय हो जाता था। सृष्टि से लेकर पांच सहस्र पूर्व तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था। अन्य देशों में मांडलिक छोटे छोटे राजा रहते थे। कौरव पांडव तक यहाँ के राज्य और राज्यशासन के आधीन भूगोल के सब राजा थे। चीन का भगदत्त, अमेरिका का वब्रुवाहन, यूरोप का विडालाक्ष, यूनान के यवन, ईरान का शल्य आदि राजा महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में आज्ञानुसार आये थे। स्वायंभुव से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात अभिमान, भोगविलास, पाखण्ड, ईर्ष्या, द्वेष, फूट आदि दुर्गुणों से हम आपस में ही लड़कर नष्ट हो गए।

सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, शशिबिन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत, भरत, उत्तानपाद, राम, रघु आदि चक्रवर्ती आर्य राजा थे। मध्ययुग में विक्रमादित्य, हर्ष, चन्द्रगुप्त, अशोक आदि महाप्रतापी राजा हुए। मुसलमानी शासन काल में महाराणा प्रताप, शिवाजी महाराज, गुरु गोविन्दसिंह जी ने मुसलमानों से लोहा लिया। आधुनिक युग में दयानन्द, तिलक, गांधी तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में हमने अंग्रेजों से अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की।

आर्य युद्ध विद्या विशारद थे। वे अपनी ओर से किसी को दु:ख नहीं देते थे पर अत्याचारियों को

कठोर दण्ड देते थे। अत्याचार करने वालों से अत्याचार सहने वाला अधिक पाप का भागी होता है यह बात वह मानते थे। संसार के देशों को जीत, शांतिदायिनी भारतीय संस्कृति, सभ्यता और सुव्यवस्था का प्रचार कर प्राणी मात्र का सुख देना तथा दुष्टों को कठोर दण्ड देना उनके जीवन का लक्ष्य था। आज हम इतने कायर हो गये हैं कि हमारी माता बहिनों की लाज हमारे सामने लुटती हैं, हमारे भाईयों का धन और प्राण हर जाता है, पर हम कुछ भी नहीं कर पाते। कहां हमारे पराक्रमी पूर्वज और कहां हम जैसे कायर उनकी संतान? प्राचीन आर्य लोहे के बाण अथवा गोले में ऐसे पदार्थ रखते थे जो अग्नि के लगाने, सूर्य किरण अथवा वायु के स्पर्श होने से, अग्नि छोड़ने लगता था। इसको वे आग्नेयास्त्र कहते थे। इस अस्त्र के निवारण के लिये वारुणास्त्र था जो ऐसे द्रव्यों के योग से बनता था जिसका धुंआ वायु के स्पर्श होते ही बादल बनकर वर्षा करने लगता था और अग्नि को बुझा देता था। नागफांस शत्रु के अंगों को जकड़ कर बाँध देती थी। मोहनास्त्र में नशे की वस्तुयें पड़ी होती थीं जिसक धुंये के लगने से शत्रु सेना निद्रास्थ और मूर्छित हो जाती थी। पशुपास्त्र विद्युत उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करता था। उस समय शतघ्नी तोप को और भुशुण्डी बन्दूक को कहते थे। आग फेंकने और बुझाने वाले नाना प्रकार के शर, वायुयान, रथ, हाथी, घोड़े युद्ध में प्रयोग किए जाते थे। आजकल हम एटमबम गैसे आदि को देखकर आश्चर्य प्रकट करते हैं परन्तु यह सब हमारे पूर्वजों द्वारा अत्याचारियों का दमन करने के लिये व्यवहार में लाई जाती थीं।

आत्मिक ज्ञान में आज भी हम संसार में ऊँचे हैं। जैकायलट अपनी 'बाइबिल इन इण्डिया' में लिखता है कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्यावर्त्त है। सब विद्या तथा मत यहीं से फैले हैं। वह परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि 'हे परमेश्वर ! जैसी उन्नति आर्यावर्त्त की पूर्वकाल में थी वैसी हमारे देश फ्रांस की कीजिए।" यदि संसार वास्तविक शान्ति चाहता है तो उसे भारतीय ज्ञान का पान करके तदनुसार कर्तव्य करना होगा, तभी संसार में शान्ति और सुख की वर्षा होगी। हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान, इतिहास और आचार पर अभिमान होना चाहिये। उसको जानना और उसका प्रचार करना हमारा कर्तव्य है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थों में सर्वत्र 'आर्य' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। विष्णु पुराण तृतीय अध्याय 7 श्लोक 31 में यमराज ने कहा है कि जो मनुष्य अशुभ गति, असत्कार्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है। आर्य पुरुषों का सत्संग कर जो प्रतिदिन शुभ कर्मों को करते हैं वही विष्णु के भक्त हैं। पद्मपुराण तृतीय सर्ग में लक्ष्मी जी ने सावित्री से कहा है कि हे आर्ये ! तुम शीघ्र उठकर चलो। मुद्रा राक्षस के अनेक पृष्ठों में आर्य शब्द आता है। अमरकाण्ड भूमिवर्ग अष्टम पत्र में लिखा है कि 'आर्यावर्त पुण्यभूमिर्मध्यं विंध्यहिमालियो:' हिमालय और विंध्याचल के बीच की पवित्र भूमि को आर्यावर्त्त कहते हैं। सुन्दरकाण्ड में सीता ने राम और लक्ष्मण को आर्य पुत्र और हनुमान ने सीता को आर्य कहा है। इसी काण्ड में सीता और हनुमान ने रावण से अनार्य कहा है। यह उदाहरण मात्र हैं,

लगभग सभी स्थलों पर भारत के पुरुषों के लिए आर्य शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वेद में अर्य और आर्य दो शब्द आते हैं। अर्य शब्द ईश्वर के अर्थों में कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है। अर्य शब्द में अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय लगा देने से आर्य शब्द बन जाता है जिसका अर्थ ईश्वर का पुत्र होता है। हमारे प्राचीन पुरुषों सद्गुणों के धारण करने से आर्य, हमारी जाति आर्य जाति और देश आर्यावर्त्त प्रसिद्ध हुआ। महाभारत उद्योग पर्व अ0 99 में लिखा है–

वृत्ते नहि भवत्यार्योन धनेन नविद्यया।

अर्थात् विद्या और धन से आर्य नहीं होता किन्तु सदाचारी बनने से ही आर्य कहाता है। मनु ने अ0 10 श्लोक 67 में कहा है आर्य पुरुष से अनार्य स्त्री में उत्पन्न हुआ बालक गुणों से आर्य होगा और अनार्य पुरुष से स्त्री में उत्पन्न पुत्र अनार्य कहायेगा। ❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 200/– दो सौ रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 2100/– दो हजार एक सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार जन–जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या– 144101000002341

दान देने हेतु– श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या– 144101000000351

गतांक से आगे–

कर्म में नीति–अनीति का विचार

लेखकः आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

अतः नीति निर्धारण परोपकार की दृष्टि से ही नहीं करना चाहिये बल्कि मनुष्यत्व की दृष्टि से होना चाहिए और वह भी मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा जिन गुणों का उत्कर्ष है उनकी दृष्टि में रखकर। केवल परोपकार करना ही नीतिमत्ता का परम तत्व है, ऐसा न कहकर यह मानना चाहिए कि जो कर्म मनुष्यों के मनुष्यत्व को शोभा दे अथवा मानवता जिसे उचित समझे एवं जिससे मानवता की वृद्धि हो वही सत्कर्म, सदाचार अथवा नीतिधर्म है। मानवता की इस अत्यन्त व्यापकदृष्टि को स्वीकार कर लेने पर अधिकांश लोगों का अधिक सुख उसका एक लघु भाग हो जाता है। मानवता और मनुष्यत्व क्या है इस पर भी सूक्ष्म विचार किये बिना समस्या का समाधान नहीं हो सकता। मनुष्यता के स्वरूप का विचार करते हुए उसमें विद्यमान–स्वार्थ–बुद्धि, दया, उदारता, दूरदृष्टि, तर्क, शूरत्व, धृति, क्षमा और इन्द्रिय निग्रह आदि पूर्वोक्त सभी गुण सामने आ जाते हैं। कई नीतिशास्त्र का विवेचन करने वाले इस समुदायत्मक मनुष्यधर्म को ही आत्मा कह दिया करते हैं। मनुष्यता वास्तव में पूर्वोक्त धर्मों में है और ये धर्म किसी आश्रय विशेष के बिना रह नहीं सकते। स्वार्थ, तर्क, उदारता आदि धर्म किसी जड़ और ज्ञानशून्य पदार्थ के धर्म तो बन नहीं सकते और न उनमें दया, परोपकार, दूरदर्शिता और नियमनात्मक वृत्ति ही हो सकती है। इनका अधिष्ठान तो कोई ज्ञानवान् चेतन ही हो सकता है और वह भी स्थायी और नित्य। अस्थायी तत्व में नित्य नीतिमत्ता के बीज भूतपूर्व कथित धर्म ठीक नहीं घट सकते हैं। बिना ज्ञान के तर्क की स्थिति नहीं हो सकती और ज्ञान अनित्य का धर्म नहीं। अनित्य का धर्म मानने पर ज्ञान की समस्त समस्याओं का संसार में समाधान नहीं हो सकता है। दया को ही लीजिए, यह अहिंसा और परोपकार धर्म की उपस्थापिका है। यदि यह शरीर आदि किसी अस्थायी वस्तु का धर्म माना जावे तो प्रश्न उठेगा कि इसके वर्तने की आवश्यकता ही क्या? क्योंकि अस्थायी वस्तु शाश्वत तो है नहीं फिर इस भले बुरे का उत्तरदायी कौन होगा। यदि नीति धर्म के सारे नियम शरीर के साथ ही समाप्त होने वाले हैं, बाद में उनका कोई उत्तरदायित्व अथवा उनके भले बुरे परिणामों के प्रभाव की कोई स्थिर वस्तु नहीं तो फिर इनके मानने की आवश्यकता ही क्या है। अतः यह मानना पड़ेगा कि नीतिधर्म के उत्तरदायी को नित्य होना चाहिए। यदि इन मनुष्यगत धर्मों को नित्य वस्तु का धर्म न माना जावे तो नीतिमत्ता के नियम भी अस्थायी और अनित्य होंगे। वे क्षण–क्षण में बदलते रहेंगे। परन्तु नीति के अहिंसा सत्य आदि धर्मों की ऐसी स्थिति नहीं। वे नित्य और शाश्वत माने गये हैं। इसलिये भी नीति धर्म के बीजभूत धर्मों के आश्रय मनुष्यत्व के मूल तत्व को स्थिर और नित्य मानना चाहिए। यह नित्यतत्व आत्मा है, जो शरीर,

इन्द्रिय और अन्तःकरण आदि के साथ मिलकर पूर्वोक्त धर्मों को धारण करता हुआ मनुष्यत्व अथवा मानवता का रूप धारण कर रहा है। शरीरेन्द्रिय और अन्तःकरण परिवर्तनशील और विनाशी है। आत्मा अविनाशी और नित्य है। नीतिमत्ता का निर्धारण करते समय केवल शरीर, इन्द्रिय और मन के सुख को लेकर परिणाम नहीं निकालना चाहिये बल्कि मनुष्यत्व के महान तत्व नित्य आत्मा के सुख आदि का विचार भी ध्यान में रखने चाहिएँ। शरीरेन्द्रिय आदि का सम्बन्ध केवल इसी प्रत्यक्ष लोक से ही है अतः उनके सुख पर निर्धारित नीति धर्म एकदेशीय ठहरेगा। आत्मतत्व नित्य है उसका सम्बन्ध ऐहिक और आमुष्मिक जीवन तथा उद्देश्य से भी है अतः इन सभी बातों का विचार करना आवश्यक है। यदि आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने वालों की भांति ही आधिभौतिक पंडित मनुष्यत्व के विशुद्ध तत्व इस आत्मतत्व को मानकर नीति का निर्णय करते तो यह महान दोष जो उनके नीतिमीमांसाशास्त्र में देखा जाता है न रहता। चाहे जो कुछ भी हो इतने विवेचन से हम इस परिणाम पर तो पहुंच ही गये कि आधिभौतिक सुखवादी स्वार्थ, भावीस्वार्थ, उच्चस्वार्थ और परोपकार के सोपानों को लांघते हुए अन्त में मनुष्यता पर आ पहुँचते हैं। अन्तर केवल यही रह जाता है कि वे मनुष्यत्व के विषय में भी प्रायः सब लोगों के बाह्य सुख की ही कल्पना को प्रधानता देते हैं। इस अन्तर के कारण ही उनके पक्ष में पुनः दोष खड़ा हो जाता है। वह दोष यह है कि वे बाह्य सुख की अपेक्षा अन्तःसुख और अन्तःशुद्धि को कुछ महत्व नहीं देते और न इनका विचार ही करते हैं। यह मान भी लिया जावे कि मनुष्य का सारा प्रयत्न सुखप्राप्ति और दुःखनिवारण के लिये है तथापि जब तक यह न निर्णीत हो जावे कि सुख किसमें है–सांसारिक विषय भोग में ही अथवा और किसी में–तब तक कोई भी आधिभौतिक पक्ष ग्राह्य नहीं हो सकता। आधिभौतिक पण्डित भी इस पक्ष को स्वीकार करते हैं कि शारीरिक सुख से मानसिक सुख की महत्ता अधिक है। एक मनुष्य के समक्ष पशु को प्राप्त होने वाले सारे सुखों को रखते हुए यदि पूछा जावे कि क्या वह पशु होने को तैयार है तो स्पष्ट नकार में ही उत्तर मिलेगा। ज्ञानीजनों को तो इस बात के कहने की आवश्यकता ही नहीं कि तत्वज्ञान के गूढ़ रहस्यों के मनन से बुद्धि में जो प्रसन्नता होती है वह बाह्य सम्पत्ति और सुखों से सर्वथा कई गुणा योग्यता वाली है। बुद्धि सुख के समक्ष बाह्य सुख तुच्छ पड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सोचने की बात है कि लोक में मनुष्य जो कुछ किया करते हैं वह बाह्य सुख को उद्देश्य मानकर उसी के लिये ही नहीं किया करते। बाह्य सुखों की तो वार्त्ता ही क्या, अवसर आने पर लो जीवन की भी परवाह नहीं करते और सत्य आदि नीति–नियमों की योग्यता को जीवन से अधिक समझकर जीवन त्याग में भी तत्पर हो जाते हैं। नीतिधर्मों के पालन में बाह्य सुख को प्रधानता न देकर उससे मनोनिग्रह को करने में ही मनुष्य को मनुष्यत्व है। नीति के धर्मों की पालना में बाह्य सुख की लोलुपता का परित्याग कर उससे मन का निग्रह करना चाहिए। मनोनिग्रह मनुष्यता का एक उत्तम तत्व है। यही कारण है कि अध्यात्मविद्या के जिज्ञासु पुत्र, कलत्र, धनधान्य आदि को क्षणिक समझ कर उससे विरक्त रहने में ही श्रेय मानते हैं। संसार के सभी सुखों को ऐसे व्यक्ति प्रेय समझकर श्रेय आत्मसुख

को ही उसकी अपेक्षा चुनते हैं। जो मनुष्य यथार्थतः बुद्धिमान् होता है वह प्रेय की अपेक्षा श्रेय को अधिक पसन्द करता है। जिसकी बुद्धि मन्द होती है उसको आत्मकल्याण की अपेक्षा प्रेय अर्थात् बाह्य इन्द्रिय–गम्य विषय सुख ही अधिक अच्छा लगता है। वह इस ऐहिक सुख को ही परम उद्देश्य समझता है और जो कुछ करता है वह इस अपने बाह्य आधिभौतिक सुख ही के लिये अथवा दुःखों को दूर करने के लिये ही करता है। हम ऊपर कह आये हैं कि बाह्य सुखों की अपेक्षा बुद्धिगम्य अन्तः आध्यात्मिक सुख ही स्थायी और श्रेष्ठ है। विषयसुख अनित्य है। यह दशा नीतिधर्म की नहीं देखी जाती। सत्य आदि धर्म बाह्य उपाधियों और सुख दुःख पर नहीं आधारित है। वे सर्वदा सब अवसरों पर कार्य में एक समान उपयोगी हो सकते हैं। यही कारण है कि वे नित्य माने जाते हैं। यह नित्यता नीतिधर्मों में कहाँ से आयी और कैसे आयी–अर्थात् इसका प्रधान कारण क्या है? इन प्रश्नों का समाधान पूर्व दिखलाये गये आधिभौतिकवाद से सर्वथा असम्भव है। यदि बाह्य सृष्टि के सुख दुःखों के अवलोकन से कुछ सिद्धान्त निकाला जावे तो सब सुख दुःखों के स्वभावतः अनित्य होने से उनके अधूरे आधार पर बने हुए नीतिसिद्धान्त भी वैसे ही अनित्य होने और ऐसी परिस्थिति में सुख दुःखों की कुछ परवाह न भी करके सत्य अथवा परार्थ के लिये जीवनोत्सर्ग करने की जो सत्यादि धर्मों की त्रिकालाबाध स्थिति अथवा नित्यता है वह अधिकांश लोगों के अधिक सुख के नियम से सिद्ध न हो सकेगी। भारतीय ऋषियों ने इस गूढ़ तत्व को समझा था और स्पष्ट शब्दों में व्यास ने (महाभारत स्व0 5। 60; उ 39। 12। 13) में घोषित किया कि सुख दुःख अनित्य हैं, परन्तु धर्म (नीतिनियम) नित्य हैं। इसलिये सुख की इच्छा से, भय से, लोभ से अथवा मृत्यु के संकट आने पर भी धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। यह धर्म का आधार जीव नित्य है और सुख दुःख आदि बाह्य विषय अनित्य हैं। भर्तृहरि ने भी कुछ इसी से मिलती जुलती बात कही है। उनके अनुसार कोई निन्दा अथवा स्तुति क्यों न करे, धन रहे अथवा चला जावे, आज ही मृत्यु समक्ष उपस्थित हो या कालान्तर से आवे परन्तु धीर और ज्ञानीजन न्यायमार्ग से विचलित नहीं होते। इस प्रकार आधिभौतिकवादियों के नीतिनिर्माणविषयक मानदण्ड का विवेचन कर यद्यपि शाश्वत नीतिधर्म के निर्णय का वास्तविक तत्व स्थापित किया गया परन्तु कुछ थोड़ी–सी अर्ध सच्चाइयां इन वादियों की और भी हैं जिनका निराकरण भी परमावश्यक है। उनका भी थोड़ा सा विचार किया जाता है। आधिभौतिक सुखवादी बाह्य सुख पर ही सारा बल देते हैं और समझते हैं कि नीतिनिर्धारण में यह एकमात्र निर्दोष मार्ग है परन्तु वे संसार की वास्तविक स्थिति का विचार नहीं करते। संसार जहाँ कर्मभूमि है वहाँ इसमें सुख और दुःख दोनों हैं केवल सुख ही सुख मिलना इसमें असम्भव है। फिर दुःख को भी देख कर विचार करना चाहिए। दुःख सदा के लिये संसार से नष्ट हो जावे और सुख ही सुख मिलता रहे यदि यह बात संसार में ठीक उतरती होती तो आधिभौतिकवादियों की गाड़ी कुछ आगे चल सकती थी परन्तु अनुभव इसके विपरीत है। संसार में सुख दुःख दोनों हैं और सुख की अपेक्षा दुःख का बाहुल्य है। यदि इस बात की गहराई में बैठने कर यत्न किया जावे कि यहाँ पर सुख अधिक है अथवा

दु:ख तो मानना पड़ेगा कि दु:ख अधिक है। जिस सुख को हम सुख कहते हैं वह भी दु:ख से भरा है। वह भी विशुद्ध सुख नहीं–दु:ख का मिश्रण है। संसार के प्रत्येक सुख में चार दोष ऐसे पाये जाते हैं जिनसे यह सुख भी दु:खाघ्रात समझा जाता है। साधारण व्यक्तियों को इस तथ्य का भान नहीं होता परन्तु विवेकी उसे समझते हैं। ये चारों दोष दार्शनिक दृष्टि से विचार करने पर निकलते हैं–परिणाम, ताप, संस्कार और संसारी मूलतत्व की परिवर्तनशीलता। संसार के सभी बाह्य सुखों में ये बातें देखी जाती हैं। जब कोई सुख हमें प्राप्त होता है तो वह होता क्या है? केवल भोगों में इन्द्रियों की तृप्ति अथवा उपशान्ति। इस प्रकार दु:ख क्या है? भोगों में इन्द्रियों की चपलता से होने वाली अतृप्ति अथवा अनुपशान्ति। पूर्व कहे गये सुख दु:ख लक्षणों का एक यह रूपान्तर लक्षण है। अत: इन्द्रियों को भोगाभ्यास से तृष्णारहित नहीं किया जा सकता, इसलिये जब कोई सुख इन्हें प्राप्त होता है तो उसकी अनुकूलता में इन्हें राग उत्पन्न होता है। तथा इन्द्रियों की भोग में प्रवीणता बढ़ती है। इस राग से एक प्रकार की वासना बन जाती है। इन्द्रियों को सुख के साधन में रागज वासना और उसके विरोधी साधन में फिर किसी समय यह छिन न जावे द्वेषज वासना बनती है। सुख की वासना के सदा प्रबुद्ध होने से उसके मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं के प्रति द्वेषज वासना उन्हें निवारण के लिये प्रेरित करती है। इस प्रेरणा से वह प्रयत्न करता है परन्तु उनके परिहार में असमर्थ होने पर विमूढ़ हो अनुचित कार्यों को भी कर बैठता है जो उसके लिये भविष्य में एक नये दु:ख का जन्म दे देते हैं। इस प्रकारयह सुख परिणामत: दु:ख में परिवर्तित हो जाता है। सुख में लोभ और मोह का होना स्वाभाविक है। सुख के विरोधी में द्वेष होता है और इस प्रकार द्वेष में बँधे हुए जड़ चेतन साधनों के अधीन ताप अर्थात् दु:ख का अनुभव होता है। द्वेषज वासनायें इसमें प्रधान कारण हैं। मनुष्य इसके वश हो दु:ख की उपस्थिति काल में सुख की इच्छा करता हुआ किसी की हानि और किसी का अनुग्रह करता है। लेकिन यह कर्म उन वासनाओं से ही होता है जो वास्तव में लोभ और मोह से हुई हैं। इस प्रकार यह लोभ और मोह से होने वाली वासना ताप दु:ख है। सुख के अनुभव से सुख की वासना और दु:खानुभव से दु:ख की वासना बनती है। ये वासनारूपी संस्कार सुख और दु:ख के प्रति राग और द्वेष पैदा करते हैं। इनसे तदनुरूप ही कर्म पैदा होता है। इन कर्मों से पुन: ऐसे संस्कार बनते हैं। इस प्रकार बराबर एक के बाद दूसरे का अनादि चक्र चलता रहता है। वासना की कभी शान्ति नहीं होती वह सदा भोगेच्छा को बढ़ाती है और भोग से पुन: वासना बनती है, इस प्रकार संसार का चक्र चलता रहता है और सुख भी दु:ख रूप में परिणत होता जाता है। यही संस्कार से दु:ख का होना है। संसार की प्रत्येक वस्तु चंचल है। उसी प्रकार मनुष्य की सुख और दु:ख की वृत्ति भी चंचल है। अभी इस क्षण में किसी वस्तु में सुख प्रतीत हो रहा है, दूसरे समय में वही दु:ख देने वाली बन जाती है। वस्तुओं के धर्म चंचल होने से सुख में स्थिरता नहीं रहती। सुख दु:ख के रूप में परिवर्तित होता रहता है–यह संसार के मूलतत्व की चंचलता का परिणाम है। इस प्रकार विचारने पर संसार दु:खमय है और उसमें सुख भी दु:ख से मिश्रित है–ऐसा परिणाम निकलता है। जब संसार दु:खमय है तो फिर सुख के

आधार पर नीतिनिर्धारण किस प्रकार संभव हो सकता है? संसार में दुःख अधिक है इस पर आधिभौतिक पश्चिमी पण्डित यह आक्षेप करते हैं कि यदि संसार में सुख से दुःख ही अधिक होता तो अधिकांश लोग अवश्य ही आत्महत्या कर डालते क्योंकि जब उन्हें रहने के झंझट में क्यों पड़ते। चूंकि मनुष्य बहुधा अपनी आयु से नहीं ऊबता इसलिये निश्चयपूर्वक यही अनुमान किया जाता है कि इस संसार में उसे दुःख की अपेक्षा सुख ही अधिक है और इसी कारण इस सुख को परमसाध्य समझ कर धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म का निर्णय भी किया जाना चाहिए। देखने में यह प्रश्न बहुत जटिल है परन्तु विचार यदि किया जावे तो यह केवल प्रश्नाभास सिद्ध होगा। आत्महत्या का लोकसुख अथवा दुःख के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। जहाँ दुःख हो वहाँ मनुष्य आत्महत्या ही कर बैठे यह उदाहरण भी ठीक नहीं। संसार में ऐसे भी लोग हैं जो खाने के लिये भोजन और पहनने के लिये कपड़े नहीं रखते, भूखे और नंगे रह कर जीवन बिताते हुए भी वे आत्महत्या नहीं करते, इससे क्या यह अनुमान बन सकता है कि उनका जीवन सुखी है। विकासवाद के जन्मदाता चार्ल्स डार्विन ने दक्षिणी अमेरिका के कुछ ऐसे जंगली लोगों का वर्णन किया है जो अत्यन्त असभ्य हैं। वे स्त्री पुरुष कठोर जाड़े के दिनों में भी नंगे घूमते रहते हैं, इनके पास अन्न का कुछ भी संग्रह नहीं होता इसलिये इन्हें कभी-कभी भूखों मरना पड़ता है, तथापि इनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती जाती है। ये जंगली दुःख सहते हुए भी जान नहीं देते, परन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि इनका जीवन सुखी है। लोक में कुष्ट रोग से गलितांग, कराहता हुआ भी व्यक्ति आत्महत्या नहीं करता, आत्महत्या करना तो दूर रहा वह अपने जीवन को कायम रखने का प्रयत्न करता है परन्तु इससे यह नहीं माना जा सकता कि उसका जीवन सुख में है। क्या कोई आधिभौतिक पण्डित यह कह सकेगा कि इस कुष्टी का जीवन सुखमय है और इसीलिये वह जीवन से आत्महत्या द्वारा पिण्ड नहीं छुड़ाना चाहता। यदि दुःख भोग ही आत्महत्या का कारण होता तो प्रत्येक दुःखी आत्महत्या करता परन्तु लोक इस बात का उदाहरण नहीं। फिर यह भी तो प्रत्येक मनुष्य को मालूम है कि जो पैदा है वह अवश्य मरेगा। मरने से कोई बच नहीं सकता। मृत्यु किसी दिन इन सारे सुखों को छुड़ा देगी जिनके लिये हम प्रयत्नशील हैं। मौत का दुःख भी कोई थोड़ा नहीं, नाम लेते ही हृदय में भय उत्पन्न हो जाता है। परन्तु यह सब होते हुये भी कोई यह नहीं सोचता कि जब कल मरना है तो आज ही क्यों न आत्महत्या कर ली जावे। जिस प्रकार दुःख के साथ आत्महत्या की कोई व्याप्ति नहीं उसी प्रकार सुख के साथ जीवन धारण का भी कोई सम्बन्ध नहीं दीखता। बहुत से लोग सुखमय जीवन में होते हुए भी दूसरों के हित जीवन छोड़ देते हैं। लड़ाई में लड़ने वाले योद्धाओं को जीवन में जो सुख प्राप्त है उससे वे न निर्विण्ण ही हैं और न मरने में कोई उससे विशेष सुख ही उन्हें मिलेगा, फिर भी वे सहर्ष प्राण देते हैं, अपने दुःख से दुःखी होकर नहीं देश के लिये और जाति के लिये। मनुष्य जीवन संसार में श्रेष्ठ है। मानव इस बात में ही अपने को परम धन्य मानता है कि "वह पशु नहीं है" मनुष्य है और और सब सुखों की अपेक्षा मनुष्य होने का उसका सुख इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि इसे छोड़ने को तैयार नहीं।

-(शेष अगले अंक में)

।। ओ३म् ।।

श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा

में

पूज्य आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी महाराज के जन्म शताब्दी समारोह के भव्य आयोजन पर

अथर्ववेद पारायण यज्ञ

दिनांक– 21 जुलाई से 25 जुलाई 2024 दिन– रविवार से गुरुवार तक

सभी भद्रपुरुषो !

आपके अपने गुरुकुल श्री विरजानन्द आर्ष गुरुकुल, वेदमन्दिर मथुरा का वार्षिक उत्सव आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार 21 जुलाई से 25 जुलाई 2024 दिन रविवार से गुरुवार तक महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, आर्य समाज के लिए सर्वात्मना समर्पित आर्य जगत् के यशस्वी वक्ता, सत्य प्रकाशन एवं वेद मन्दिर के संस्थापक, तपोभूमि पत्रिका के आदि सम्पादक, अनेकानेक ग्रन्थों के प्रणेता, वैदिक परिवार निर्माण के अभियान को नूतन दिशा देने वाले पूज्य आचार्य श्री प्रेमभिक्षु जी महाराज की जन्म शताब्दी के रूप में बड़े उत्साह से मनाया जा रहा है, आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् व संन्यासी भी पधार रहे हैं। जगत् प्रसिद्ध योगगुरु श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज की 25 जुलाई की उपस्थिति में कार्यक्रम अधिक गरिमामय होगा। इसी अवसर पर नवीन ब्रह्मचारियों के प्रवेश के अवसर पर उपनयन संस्कार का भव्य आयोजन होता है। उस समय वैदिक कालीन दृश्य उपस्थित हो जाता है। आप भी परिवार सहित आकर अपने बच्चों को वैदिक संस्कृति से संस्कारवान करें जिससे वे अपना, परिवार, राष्ट्र और समाज का उद्धार कर सकें।

यही मानव जीवन की सफलता है ऐसे पुनीत कार्य में सैकड़ों सांसारिक आवश्यक कार्यों को विराम देकर भी पधारें। क्योंकि ऐसे जीवन निर्माण के समय बार–बार नहीं आते। उत्सव आप लोगों के लिए ही है उसकी सफलता का दायित्व भी आप पर है। आशा है इस दैवीय दायित्व का निर्वहन कर अपने मानव जीवन को सार्थक करेंगे। यजमान बनने के इच्छुक परिवार पूर्व ही दूरभाष से सूचित करें।

प्रतिदिन का कार्यक्रम

प्रातः–	9 बजे से 12 बजे तक	यज्ञ एवं प्रवचन
सायं–	3 बजे से सायं काल 6 बजे तक	यज्ञ एवं प्रवचन

निवेदक

आचार्य स्वदेश (अध्यक्ष)	डॉ0 प्रवीण अग्रवाल (मंत्री)	दिनेशचन्द्र बंसल (कोषाध्यक्ष)
9456811519	9359518799	9412728407

आज के समय में परिस्थितियाँ बड़ी जटिल हैं पहले समय में व्यक्ति की भौतिक आवश्यकतायें बहुत कम थीं इसीलिए उसे अपने विषय में, परिवार के विषय में, समाज के विषय में विचार करने का समय था। समाज सुधारकों को सहज उपलब्ध था वर्तमान समय घोर भौतिकवाद का है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकतायें अपार हैं उन्हें पूरा करने के लिए वह रात-दिन पिस रहा है और मोबाइल आदि ऐसे साधन उपलब्ध हो गये हैं जिसने उसे बिल्कुल एकांगी बना दिया है। अब न वह किसी की सुनना चाहता है न सुनाना चाहता है। इस प्रवृत्ति ने उसे कहीं का नहीं छोड़ा है उसकी आत्मिक उन्नति हो रही है न सामाजिक उन्नति हो रही है।

कभी आर्यसमाज के प्रचारक कुँवर सुखलाल जी ने लिखा था कि-

तबीबों के चेहरे भी उतरे हुए हैं।
मर्ज कौम का ला दवा हो रहा है।
विधाता ये दुनियाँ में क्या हो रहा है।
जिसे देखिये वह खुदा हो रहा है।

ऐसे घोर अविद्यान्धकार में मानव पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। ऐसी विकट अवस्था में युवकों-युवतियों से कैसे सम्पर्क किया जाय जिससे उन्हें समझाया जा सके कि जिसे तुम उन्नति समझ रहे हो वह घोर अवनति है। जिसे लाभ समझ रहे हो वह महाहानि है।

उसका एकमात्र माध्यम आर्यसमाज का युवा संगठन आर्यवीर दल ही है। यही एकमात्र प्रकाश की किरण है क्योंकि आर्यवीर दल के पास महर्षि दयानन्द की कृपा से वे योजनायें हैं जिनके द्वारा भटके हुए युवतियों व युवकों को जीवन के मूल्य को समझाया जा सकता है।

आर्यवीर दल के शिविरों की दिनचर्या आत्म जागरण का अचूक अस्त्र है और शारीरिक व्यायाम उनके शरीर का सुदृढ़ और स्वस्थ ही नहीं बनाता है अपितु शरीर का क्या मूल्य है इसकी हमारे लिए कितनी उपयोगिता है। इसका प्रयोग किस भांति कहाँ-कहाँ करना चाहिए इत्यादि सारी बातें आर्यवीर दल के शिविरों में सिखा दी जाती है। साथ ही सामूहिक व्यायाम, सामूहिक भोजन, सामूहिक व्यवस्था, सामूहिक सेवा कार्य, सामूहिक दुःख-सुख की अनुभूति, सामूहिक राष्ट्रिय दायित्व, व्यैक्तिक जीवन की उपयोगिता, आध्यात्म विद्या जिसके द्वारा लोक-परलोक दोनों बनते हैं। इन सबका ज्ञान करा दिया जाता है। मेरा मानना है कि इस पतनकारी युग में आर्यवीर दल परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए अत्यन्त उपकारी है।

अन्त में अपने सभी प्रबुद्ध पाठकों से निवेदन है कि जहाँ कहीं अपने आस-पास आर्यवीर दल के शिविरों का आयोजन हो वहाँ अपने बच्चों को अवश्य भेजें। इससे बढ़कर बच्चों का वा राष्ट्र का हित कुछ भी नहीं होगा और धन, मन, तन से आर्यवीर दल को सम्बल प्रदान करें। इस संगठन को दान देना सबसे बड़ी राष्ट्र भक्ति और ईश्वर भक्ति है। यदि ऐसे संगठन से हमने हाथ खींच लिया तो समझो फिर समाज व राष्ट्र का पतन से बचाने का अन्य कोई उपाय नहीं दिखाई देता है। आशा है आप सब इस महोपकारक कार्य में आर्यवीर दल के साथ सदैव खड़े रहेंगे और राष्ट्रोद्धार में अपनी सन्तान को समर्पित कर उनके भविष्य को उज्ज्वल करेंगे।

❁❁❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (प्रेस में)		भारत और मूर्ति पूजा	30.00	दादी पोती की बातें (प्रेस में)	
शुद्ध रामायण (प्रेस में)		यज्ञमय जीवन	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00
योग दर्शन	150.00	आर्यों की दिनचर्या	30.00	नमस्ते ही क्यों	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	चार मित्रों की बातें	20.00	आदर्श पत्नी	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	90.00	मील का पत्थर	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	भ्रांति दर्शन	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
शान्ति कथा	80.00	शान्ता	20.00	मानव तू मानव बन	8.00
नित्य कर्म विधि	70.00	संध्या रहस्य	20.00	गायत्री गौरव (प्रेस में)	
सुमंगली	70.00	गीता तत्व दर्शन	20.00	सफल व्यक्तित्व (प्रेस में)	
दो मित्रों की बातें	60.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
दो बहिनों की बातें	60.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	पंचाग के गुलाम (प्रेस में)	
वैराग्य दिवाकर	50.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	सर्प विष उपचार	4.00
वैदिक संध्या विधि	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	चूहे की कहानी (प्रेस में)	
विदुर नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृष्टि में	4.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	महिला गीतांजलि	15.00	दयानन्द की दया (प्रेस में)	
चाणक्य नीति	40.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा (प्रेस में)	
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	बाल मनुस्मृति	12.00	बाल सत्यार्थ प्रकाश (प्रेस में)	
महर्षि दयानन्द का निरालापन	35.00	ओंकार उपासना	12.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण (प्रेस में)	
वेद प्रभा	30.00	पुराणों के कृष्ण	12.00		

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2024 के लिये वार्षिक शुल्क 200/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 2100/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

.....

..... कार्यालय, दिल्ली आर्य प्रति .....

....., नईदिल्ली-110001 .....

.....

..... पिन कोड .....

पत्र व्यवहार का पता :-

व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य

सत्य प्रकाशन

डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
मोबा. 9759804182

प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर प्रिंटर्स, वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित

Yogendra # 9927136600